Reg. No. 124726035RC0001 ISSN : 2562-6086

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

पुस्तक भारती
रिसर्च जर्नल

RAMAYAN

Our Golden Heritage

Jan-March 2021

Our Golden Heritage

January-March 2021

Pustak Bharati, Toronto, Canada

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

PUSTAK BHARATI RESEARCH JOURNAL

A Peer Reviewed Journal

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष- 3, जनवरी-मार्च, 2021 अंक - 1

प्रधान संपादक : डॉ. रत्नाकर नराले

सह संपादक : डॉ. राकेश कुमार दूबे

रिव्यू कमेटी

डॉ. प्रो. तंकमणि अम्मा, तिरुवनन्तपुरम्
प्रो. हेमराज सुंदर, मारीशस
डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, मुंबई
प्रो. डॉ. शांति नायर, केरल
डॉ. सिराजुद्दिन नुर्मतोव, उजबेकिस्तान
प्रो. दक्ष्य मिस्त्री, बड़ोदा
प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र, मुंबई

संपादक मण्डल

प्रो. सोमा बंद्योपाध्याय, पश्चिम बंगाल
प्रो. अरुणा सिन्हा, वाराणसी
प्रो. विनोद कुमार मिश्र, त्रिपुरा
प्रो. उमापति दीक्षित, आगरा
प्रो. उपुल रंजीथ हेवावितानागामगे, श्रीलंका
डॉ. मैरम्बी नुरोवा, ताजिकिस्तान
प्रो. दर्शन पाण्डेय, दिल्ली

परामर्ष मण्डल

डॉ. तुलसीराम शर्मा, कनाडा
डॉ. मनोज कुमार पटैरिया, नई दिल्ली
डॉ. एन. के. चतुर्वेदी, जोधपुर
प्रो. नीलू गुप्ता, अमेरिका
डॉ. मृदुल कीर्ति, आस्ट्रेलिया
प्रो. कमलेश शर्मा. कोटा

संरक्षक मण्डल

डॉ. यशवंत पाठक, अमेरिका
श्री रतन पवन, अमेरिका
श्री पंकज पटेल, अमेरिका

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

1. 21वीं सदी के सामाजिक सांस्कृतिक सरोकार और हिंदी भक्ति आंदोलन : संत कबीर के संदर्भ में 3
   डॉ. दयानिधि सा
2. Archaeometallurgy in the Rigveda 8
   Satya Narain and Navin Chandra
3. नवीन शोधपरक विषयों का बीजवपन करती पुस्तक 'मध्यकालीन कविता का पुनर्पाठ' 37
   डॉ. करुणा शर्मा
4. आधुनिक कवियों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना 43
   प्रदीप कुमार
5. वर्तमान हिंदी साहित्य : दृष्टि और मूल्यांकन 49
   प्रो. हेमराज सुंदर
6. महादेवी वर्मा के काव्य में बौद्ध दर्शन का प्रभाव 53
   डॉ. विनीता शुक्ला
7. जन संवेदना के कवि : मुक्तिबोध 61
   डॉ. कमला चौधरी
8. "Semantic analysis of the 66
   circumstances of the course of action
   Zamaleeva Eleonora Ilsurovna

संपादकीय कार्यालय

Toronto, Ontario, Canada, M2R
email : pustak.bharati.canada@gmail.com
Web : pustak-bharati-canada.com

प्रबंध एवं वितरण

Pustak Bharati (Books-India)Publishers & Distributors
H.No. 168, Nehiyan,Varanasi-221202, U. P. India
email: pustak.bharati.india@gmail.com

पत्रिका का मूल्य / सदस्यता राशि Pustak Bharati Pubs.& Dists. के सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मंगारी के खाता संख्या 5144696109 (IFSC: CBIN0281306) में जमाकर उसकी सूचना मेल या नं. +91-7355682455 पर दें।

* प्रत्येक शोध-पत्र में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। संपादक मंडल का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादकीय

रत्नाकर नराले

भारतीय संस्कृति का विश्वप्रसार

राष्ट्रभाषा हिंदी एवं भारतीय संस्कृति का विश्व प्रसार पुस्तक भारती का प्रमुख ध्येय होने के नाते इस शुभ कार्य में जो असामान्य महानुभाव अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अहोरात्र रत हैं उनका सादर गौरव करना और उनके बहुमूल्य योगदान को हमारे अंतर्राष्ट्रीय मंच से विश्व में प्रसारित करना भी हमारा कर्तव्य है. इस ध्येय को सफल करने के हेतु हम इस प्रयास में रहते हैं कि भारतीय संस्कृति को प्रसारित करने वाले महाजनों के आलेख हम अपनी पत्रिका में आमंत्रित करें और प्राप्त लेखों को सादर प्रकाशित करके विश्व के आगे रखें. इन आलेखों को पढ़ कर अन्य नवोदित तथा अनुभवी लेखक गण भी चेतना पाकर हिंदी एवं भारतीय संस्कृति की सेवा में रत हों, यही हमारी सद्भावना सदा रहती है.

आज कल की कोरोना की भयावह स्थिति में भी जिन महान लेखकों ने चित्त जुटा कर उच्च कोटि के लेख हमें भेजे हैं उन सभी विद्वज्जनों का हम मुक्त कंठ से आभार व्यक्त करते हैं. साथ ही इस महामारी के विकट समय में भी हमारी पत्रिका को जीवित रख कर आगे बढ़ाने के लिए पुस्तक भारती के सभी कर्मचारियों, सहायकों और निदेशकों को आभार ज्ञापित करता हूँ. आशा है पत्रिका का नवीन अंक पाठकों को पसंद आएगा.

Global Spread of the Indian Culture

World expansion of Indian culture being the main goal of our national language Hindi, it is our duty to give respect to ournoblemen who are involved in this auspicious work at international llevel and to broadcast their valuable contribution to the world from this international platform. To make it successful, we invite articles form qualified writers respectfully. After reading these articles, our readers should also engage themselves in the service of Hindi and Indian culture.

Even in the dreadful situation of today's COVID-19, we express our gratitude to all those great writers who have sent us their works of high quality. At the same time, I thank all the employees, assistants and directors of Pustak Bharati for keeping our magazine alive and moving forward even in the critical times of this Pandemic. Hope the readers will like this new iissue of the magazine

.

रत्नाकर नराले

1

21वीं सदी के सामाजिक सांस्कृतिक सरोकार और हिंदी भक्ति आंदोलन : संत कबीर के संदर्भ में

डॉ. दयानिधि सा

भारतीय धर्म साधना में ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्ति योग के रूप में तीन प्रणालियां प्रचलित रही हैं। भारतीय विद्वानों ने भक्ति के इस स्वरूप की व्यापक व्याख्या की है। साधन की प्रणालियों में एक गहरा अंतर्संबंध भी है। शांडिल्य भक्ति सूत्र स्वीकार करता है कि ईश्वर में अतिशय अनुरक्ति ही भक्ति है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिसके द्वारा भगवान कृष्ण की भक्ति हो। भक्ति ऐसी हो जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरंतर बनी रहे। ऐसी भक्ति से आनंद स्वरूप भगवान की उपलब्धि करके भक्त कृतकृत्य हो जाता है। भक्ति आंदोलन भगवान के प्रति मानव की प्रेम भावना का निरंतर प्रवाह है । इस भावना प्रवाह से भक्त तो आनंदित होता ही है, दूसरे भी उससे आनंद और आलोक प्राप्त करते हैं। भक्ति आंदोलन का इतिहास कोई नया नहीं है । इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। भक्ति का मूल उद्गम तो हमारे वेद हैं । उपनिषद, महाभारत, रामायण आदि ग्रंथों में विष्णु को भगवान के रूप में प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। भगवत पुराण, विष्णु पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण आदि में भक्ति के ऐसे ही बहुविध रूप वर्णित हैं। इसके बाद भक्ति आंदोलन का संपूर्ण रूप हिंदी के भक्ति साहित्य में दिखाई पड़ता है।

ईश्वर भक्ति को केवल वैष्णव भक्ति से जोड़कर नहीं देखना है। यह साधना की अनेक प्रणालियों में किसी न किसी रूप में अंतर्निहित रही है। भक्ति हमारे जीवन में हमेशा से ही प्रवाहित होती रही है। ईश्वर भक्ति की गति हमेशा एक जैसी नहीं रही है। सामाजिक राजनैतिक जन आकांक्षाओं में ईश्वर भक्ति की गति और प्रवृत्ति में युग के अनुरूप परिवर्तन भी देखने को मिलता है। भारतवर्ष में भक्ति आंदोलन का सूत्रपात दक्षिण से हुआ है। दक्षिण प्रदेश के तमिल राज्य में जहां जैन और बौद्ध संप्रदाय को सत्ता का आश्रय प्राप्त था और वे दोनों शैवों और वैष्णवों पर अनेक प्रकार का अत्याचार कर रहे थे। इनके गृहस्थ विरोधी विचार और अत्याचार ऐसे प्रबल हो गए थे कि जनता भी जैनों-बौद्धों के विरुद्ध हो गई थी। जनता ने यह पूरा जान लिया था कि नास्तिक धर्मों में कोई भी चीज तत्व की नहीं है । परिणाम यह हुआ की शैवों और वैष्णवों ने जनता के साथ मिलकर इनके विरुद्ध मोर्चा खड़ा किया और इन को निर्मूल कर दिया। डॉ. मलिक मोहम्मद ने लिखा है- "शैवों और वैष्णवों ने मिलकर जैनों और बौद्धों का बड़ा विरोध किया। उससे तमिल प्रदेश में जैन और बौद्ध धर्म की नींव हिलने लगी और नौवीं शताब्दी तक आते-आते उन दोनों नास्तिक धर्म की शक्ति क्षीण हो गई।"[01]

भारतवर्ष में भक्ति आंदोलन के अभ्युदय का कारण मुस्लिम शासकों के अन्याय-अत्याचार को भी माना जाता है। इसके विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं -"देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया था। उसके सामने ही उसके मंदिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियां तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था। वे कुछ ना कर सकते थे। ऐसी स्थिति में अपनी वीरता के गीत ना तो वह गा सकते थे और ना बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर-दूर तक स्थापित हो गए तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए थे। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के नीचे हिंदू जनता पर उदासी

छाई रही। अपने पौरुष हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नहीं था।"[02]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भक्ति संबंधी इस धारणा का खंडन कर देते हैं। उनका कहना है यह बात अत्यंत हास्यास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मंदिर तोड़ रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावना को उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था पर प्रकट हुई वह दक्षिण में।"[03]

भक्ति आंदोलन को भागवत धर्म एवं धर्म पद्धति के विकास का स्वाभाविक परिणाम मानना ही युक्तिसंगत प्रतीत होता है। इस्लाम धर्म के प्रचार एवं मुसलमानी शासन अपने संगठन को शक्तिशाली बनाने में सहायक सिद्ध हुआ होगा। भक्ति आंदोलन एक महान ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था, जिसका मूल्यांकन करना सरल नहीं है। भागवत गीता के युग के आसपास उसकी लहर प्रकट हुई । भागवत के साथ वह शक्ति संपन्न हो गई। आचार्यों के हाथों में आने पर दर्शन की चरम कोटि तक पहुंची और लोकप्रिय शक्तियों के द्वारा आसेतु हिमाचल सारे देश को आप्लावित कर सकी।

भक्ति आंदोलन के इतिहास में आलवार संतों और नायनमार संतों का विशेष योगदान रहा है। आलवार संतों को वैष्णव कहा गया है जिनकी संख्या बारह मानी गई है। आलवार संतो की रचनाएं 'दिव्य प्रबंधम' में संकलित है । नायनमार संतो को शैव कहा गया है, जिनका उद्देश्य हिंदू धर्म की रक्षा करना था। इन संतों ने अपनी सारी पूजा अर्चना वंदना शिवजी को केंद्र में रखकर की है। भक्ति आंदोलन के इतिहास को विकसित करने में भारतीय आचार्यों का विशेष योगदान है। शंकराचार्य ने पूरे देश में भक्ति का प्रचार ही नहीं किया वरन आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन भी किया। अपने अद्वैतवादी दर्शन का प्रचार करना ही उनका जीवन लक्ष्य था। उन्होंने समाज में परिव्याप्त अनैतिकता, अंधविश्वास तथा हिंसा को रोकने में ईश्वर भक्ति को ही एक मात्र शक्ति के रूप में स्थापित किया।

भक्ति आंदोलन के संगठनात्मक तत्वों को बलशाली सिद्ध करने का सबसे बड़ा श्रेय रामानुजाचार्य को है। उन्होंने भक्ति जगत में बुद्धि पक्ष एवं भावना पक्ष दोनों का समन्वय स्थापित किया। उनके द्वारा स्थापित दार्शनिक सिद्धांत विशिष्ट अद्वैतवाद के रूप में जाना जाता है। ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में निंबार्काचार्य ने द्वैताद्वैतवाद की स्थापना करके भक्ति आंदोलन को गतिशील बनाया। स्वामी रामानंद ने अपने गुरु राघवानंद से दीक्षा ग्रहण करके उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति का प्रचार प्रसार किया। काशी-बनारस में वैष्णव भक्ति को संगठित कराकर भक्ति के द्वारा सभी वर्गों और जातियों के लोगों के लिए द्वार खोल दिए। इसी संदर्भ में दक्षिण के कर्नाटक के मधवाचार्य ने द्वैतवादी चिंतन का प्रवर्तन किया और मायावाद का विरोध करते हुए ईश्वर का एक नया स्वरूप स्थापित किया। बल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद यानी पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन करते हुए कृष्ण भक्ति का जो स्वरूप निर्मित किया, उससे संपूर्ण भारतीय जनमानस कृतकृत्य हो गया। आचार्य बल्लभ ने सोलहवीं सदी में श्रीनाथ जी का मंदिर बनवाया। हिंदी भक्ति साहित्य की समृद्धि में इस मंदिर का विशेष महत्व है। इस मंदिर के महत्व को रेखांकित करते हुए देवीशंकर अवस्थी ने लिखा है -"यह मंदिर आगे चलकर न केवल बल्लभ संप्रदाय का ही केंद्रपीठ बल्कि अष्टछाप के कवियों की जन्मभूमि भी बनने का गौरव प्राप्त किया। हिंदी के भक्ति साहित्य के निर्माण में इस मंदिर का स्थान अक्षुर्ण रहेगा।"[04] चैतन्य महाप्रभु ने पूर्वी भारत तथा बंगाल में कृष्ण भक्ति तथा राधा कृष्ण की लीलाओं का स्मरण-संकीर्तन के माध्यम से भक्ति आंदोलन को त्वरानवित किया।

हिंदी साहित्य में भक्ति आंदोलन की चरम अभिव्यक्ति संवत 1375 विक्रम से सत्रहवीं विक्रम तक मानी जाती है। भक्ति साहित्य के अंतर्गत निर्गुण और सगुण भक्ति काव्य के रूप में कबीरदास, रायदास, नानक, दादू दयाल, सुंदर दास, मलूक दास, जायसी,

कुतुबन, मंझन, उसमान, सूरदास, नंददास, परमानंददास, रसखान, मीराबाई, तुलसीदास, अग्रदास, नाभादास, ईश्वरदास आदि भक्त कवि अनमोल रत्न हैं। इन भक्त कवियों ने भक्ति आंदोलन को जिस तरह से जन उपयोगी और जन कल्याणकारी बनाया है, उससे भारतीय जनमानस ईश्वर भक्ति को अपने आप में उतारने का सौभाग्य प्राप्त कर सका है। भक्ति साहित्य हमारे जीवन का हमारे समाज का साहित्य है। इतना ही नहीं वह हमारे समाज का दर्पण है, हमारे समाज का दीपक है। अपनी इसी उपलब्धियों के कारण भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहलाता है। भक्ति आंदोलन सामाजिक विषमता को मिटाकर सामाजिक सद्भाव स्थापित करता है। वह सांप्रदायिक भेदभाव, ऊंच-नीच, जात-पात, अमीर-गरीब में किसी प्रकार का भेद स्वीकार नहीं करता। भक्ति आंदोलन व्यक्तिगत और सामाजिक शुचिता पर भी विश्वास करता है। व्यक्ति के चरित्र निर्माण का पक्षधर है। इसी सामाजिक सद्भाव को गोस्वामी तुलसीदास ने इस तरह से स्थापित किया है और लोक निंदा का विरोध किया है -

"तुलसी जे कीरति चहहिं, पर कीरति को खोय।
तिनके मुंह मसि लागिहै, मिटै न मरिहैं धोय।।"[05]

भक्ति आंदोलन धार्मिक सद्भाव एवं मानवता की प्रतिष्ठा पर आधारित है। इस आंदोलन ने धर्म के असली स्वरूप की वकालत की है। बाह्य आडंबरों, यज्ञ अनुष्ठान, पापाचारों का तीव्र विरोध इस आंदोलन का मुख्य लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य को चरितार्थ करते हुए कबीर जैसे क्रांतिदर्शी संतो ने हिंदू और मुसलमान में कोई भेद नहीं माना है। कबीर दोनों धर्मों के लोगों को समझाते हुए कहते हैं -

कह हिंदू राम पियारा, तुरककहेरहमाना।
आपस में दोउ लरी-लरी मुये मरम ना काहू जाना। [06]

भक्ति आंदोलन सामाजिक सद्भाव एवं शांति स्थापित करने का एक सांस्कृतिक उपक्रम है। धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता इसका मूल स्वर है। इस आंदोलन में ज्ञान और भक्ति में, निर्गुण और सगुण में, शैव और वैष्णव में, राम और रहीम में, कृष्ण और करीम में एकता स्थापन का विनम्र प्रयास है। प्रेम इस आंदोलन का मुख्य स्वर है। सूफी मुसलमान कवियों ने हिंदू धर्म के स्वर के प्रति अनुरक्त होकर जो प्रेमाख्यानक काव्य रचे हैं, वह सांप्रदायिक सद्भाव का परिचायक है। संत कवियों, सूफी कवियों, कृष्ण भक्त कवियों तथा राम भक्त कवियों ने अपनी-अपनी प्रेम मूर्ति को लेकर ऐसी प्रबल रसधारा बहाई है जिससे संपूर्ण जनमानस लाभान्वित हुआ है ।

भक्ति आंदोलन मानवीय सरोकारों और आशयों का आंदोलन है। यह भक्ति आंदोलन प्रेम का आंदोलन है, जिसमें मनुष्य के प्रति, समाज के प्रति और संस्कृति के प्रति गहरा और निर्बंध प्रेम विद्यमान है। भक्ति काव्य ने इस आंदोलन को बड़ी व्यापकता और विस्तार प्रदान किया है। वास्तव में भक्ति आंदोलन मनुष्य के विवेकपूर्ण कर्तव्यों-अभिप्रेतों का आंदोलन है। इस भक्ति आंदोलन की प्रासंगिकता हमेशा से ही रही है। आज इक्कीसवीं सदी के प्रारंभिक दौर में हमारे सामने जितनी चुनौतियां खड़ी हैं, उन तमाम चुनौतियों को जड़ समेत मिटाने और वैश्विक सद्भाव स्थापित करने का महामंत्र भक्ति आंदोलन हमें दे सकता है। जरूरत है तो केवल उस महामंत्र को अपने आप में उतारने और उसकी पहल करने की।

हिंदी भक्ति आंदोलन को मुख्यतः चार रूपों में देखा जा सकता है - संत काव्य, सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य। निर्गुण भक्ति काव्य में संत और सूफी काव्य के बीच एक सामंजस्य दिखाई पड़ता है। संत काव्य के प्रणेता कबीरदास ने सांप्रदायिक सद्भाव के महान उद्देश्य के साथ हिंदू धर्म के मूल सिद्धांतों को मुस्लिम धर्म के मूल सिद्धांतों से मिलाकर एक नई पंथ की कल्पना की थी, जिसमें एकेश्वरवाद का संदेश था। वह निर्गुण-सगुण से परे था। उसकी सत्ता प्रत्येक कण में परिव्याप्त थी। गुरु में बड़ी शक्ति थी। वह गोविंद से भी बड़ा था, गोविंद के समान था।

"गुरु गोविंद तो एक है दूजा यह आकार ।

आपा मिटै गुरु मिलै तो पावे करतार।।"07

संत कबीर भारतीय धर्म साधना के क्रांतिदर्शी साधक तथा युग दृष्टा साहित्यकार हैं। उन्होंने भारतीय धर्म के क्षेत्र में विराट क्रांति का आह्वान किया था। उनके समकालीन भारतीय समाज अनेक दुराचारों, धर्मांधताओं, पाखंडों, व्यभिचारों से ग्रस्त था। धर्म के ठेकेदार मिथ्या एवं असत्य आचरण द्वारा भारतीय जनमानस में धर्म का दुरुपयोग करके अपनी मान प्रतिष्ठा के लिए हमेशा चिंतित रहते थे। ऐसी भीषण सामाजिक परिस्थिति से ग्रसित भारतीय समाज को धार्मिक प्रपंचों और बाह्य आडंबरों के चंगुल से मुक्ति दिलाने के लिए संत कबीर मसीहा बनकर आविर्भूत हुए थे। समय की मांग की पूर्ति करते हुए कबीर ने अपने क्रांतिकारी विचारों का तेज अस्त्र धारण करके इस विश्रृंखलित समाज को सुव्यवस्थित करने का साहसिक प्रयास किया था।

क्रांतिदर्शी कवि संत कबीर के व्यक्तित्व के बारे में डॉ. कांतिकुमार जैन लिखते हैं -"कबीर एक खतरनाक कवि हैं। कबीरदास से खतरा उस युग की उन सभी लोगों के लिए था जो स्थापित मूल्यों के परिवर्तन की कल्पना मात्र से भयभीत थी और उनसे खतरा आज के पाठक को भी है। कबीर को पढ़ने के बाद हम ठीक वही नहीं रह जाते जो हम उन्हें पढ़ने से पहले होते हैं। उनका काव्य हमें जीवन, समाज और काव्य की मूलभूत समस्याओं पर विचार करने के लिए बाध्य करता है। उनके प्रशंसक दोनो ही कबीरदास की प्रतिभा से अभिभूत होते हैं।"08

कबीर की धर्म साधना अत्यंत सरल, निराडम्बर और युगानुकूल थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में यदि कहें - "कबीर की वाणी वह लाता है, जो योग के क्षेत्र में भक्ति के बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी।" कबीर ईश्वर की सत्ता पर संपूर्ण विश्वास करते थे। ईश्वर भक्ति में ही जीवन की सार्थकता मानते थे। ईश्वर सानिध्य के बिना मनुष्य जीवन व्यर्थ है मूल्यहीन है। भगवत भक्ति आराधना से ही मनुष्य को सद्गति प्राप्त हो सकती है। सत्यम-शिवम-सुंदरम ईश्वर प्रदत्त सत्ता की अध्यात्म शक्ति को कबीर सहर्ष रूप से स्वीकार करते हैं। जनमानस में ईश्वरीय सत्ता के प्रति समर्पण की अपेक्षा रखते हैं। लोगों को ईश्वर भक्ति की ओर प्रेरित करते हुए कहते हैं

चलती चक्की देखि कै दिया कबीरा रोय।

दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय।।09

अध्यात्मवादी चिंतक के रूप में कबीर अपनी भक्ति की पावन धारा में ज्ञान को उचित मार्ग के रूप में ग्रहण करते हैं। ज्ञान का ऐसा पवित्र मार्ग है जिस पर चलकर मनुष्य ज्ञान के प्रकाश से ज्योतिर्मय होकर ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त कर सकता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए एक उचित गुरु की आवश्यकता होती है। एक महान गुरु ही शिष्य के हृदय में ज्ञान-दीपक प्रज्वलित करके हृदय की कल्मषता मिटा सकता है। आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में अध्यात्म मार्ग के अनुसरण द्वारा गृहस्थ जीवन जीता हुआ व्यक्ति ईश्वर सान्निध्य प्राप्त कर सकता है। उसे सांसारिक जीवन त्याग कर तपस्वी जीवन जीने की जरूरत नहीं है। इस सिद्धांत का वर्णन करके कबीर साधु सन्यासियों के जप-तप को निरर्थक मानते हैं। गृहस्त्यागी, साधु सन्यासी, तपस्वी लोगों पर कटाक्ष करते हुए कबीर लिखते हैं -

"कस्तूरी कुंडली बसै मृग ढूंढे बन माहि।

ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि।।"10

वस्तुतः कबीरदास साम्यवादी मानवतावादी तथा क्रांतिदर्शी संत कवि हैं। कबीर ने जनमानस में अज्ञानता के अंधेरे को मिटा कर ज्ञान की जो ज्योति जलाई है, वह पूरी विश्व मानवता के लिए हितकर है, फलप्रद है। हजारी बाबा के शब्दों में - "हजार वर्ष के इतिहास को ढूंढा जाए तो कबीर जैसा कोई चिंतक दिखाई नहीं पड़ता। निश्चित रूप से भक्ति काल के जिन चार कवियों- कबीर, जायसी, सूर, तुलसी की गणना की जाती है, उनमें कबीर आधार स्तंभ हैं।"11 कबीर की ओजस्वी वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में प्रासंगिक थी। आज इक्कीसवीं सदी के विकास के दौर में हमारे सामने

जितनी चुनौतियां हैं, उनसे लड़ने, संघर्ष करने, विमर्श करने की युगानुकूल शक्ति कबीर-वाणी में मौजूद है। कबीर का ज्ञान दीपक आज की जीवन-जटिलताओं को मिटा कर विश्व मानवता एवं वैश्विक शांति-सद्भाव का प्रकाश चारों तरफ फैला सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

01.www.hindikunj.com

02.हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, नवीन संस्करण 2020, पृष्ठ 67

03.हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नवीन संस्करण 2019, पृष्ठ 87

04.www.hindisamay.com

05.रामचरितमानस, अयोध्या कांड, श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भंडार, वाराणसी, संसोधित संस्करण 2007, पृष्ठ 107

06.कबीरदास, कांतिकुमार जैन, दिव्या प्रकाशन, ग्वालियर, 1994, पृष्ठ 83

07.वही, पृष्ठ- 89

08. वही, पृष्ठ-75

09. वही, पृष्ट-86

10. वही, पृष्ठ-91

11. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, 1960, पृष्ठ 56

सहायक प्राध्यापक व विभाग प्रमुख (हिन्दी)
महात्मा गांधी स्नातक महाविद्यालय,
भुक्ता, जिला बरगड़, ओड़िशा

2

Archaeometallurgy in the Rigveda

Satya Narain and Navin Chandra

Abstract

Rigveda is the earliest and preserved text in the history of the World. The ancient Indian civilization in the Rigveda period was a metal using civilization. Gold and ayas were the only two known metals in the Rigveda Period. Gold was mined from the alluvial sands of the Indus River. Rigvedic people extracted gold in dust and fragments forms and consolidated it into a lumpy form called *hiraṇyapinda* by melting and casting techniques. The Metalworkers used wood fire and air blowing to reach the temperature needed to melt gold in the early period of the Rigveda. Gold had become a metal of everyday use for making various personal ornaments and *niṣka* coins.

Gold was soft, and it was not suitable for making much needed hard and sharp objects. Rigvedic people discovered a new metal and named it "ayas". New textual evidence is presented, confirming that *aya*s stones were naturally occurring iron sourced from meteoric iron debris fallen from the sky. Newly found meteoric iron could not be melted but was a metallic material ready-to-use form and suitable for making hard and sharp objects. Rigvedic Metalworkers upgraded their hot forging skills based on their gold metalworking experience and shaped small meteoric iron pieces as domestic tools and weapons that required a sharp edge. The history of ancient Indian metallurgy began with the metal processing and metalworking of naturally occurring gold and meteoric iron in the Rigvedic period. The unique feature of this metallurgy was that it started with soft gold as and hard iron metals in the Early Rigvedic Period.

Key Words: Rigveda, *hiraṇya* (Gold), *rukma* (Gold), *ayas* (Meteoric iron), *niṣka* (Coin-like gold piece)

Abbreviations: RV-Rigveda, RVP-Rigvedic Period, TME- Textual Metal Evidence

INTRODUCTION

Rigveda is the most ancient poetic literature in the history of Mankind.

UNESCO has included Rigveda in the list of such literature signifying World Human Heritage. Rigveda is a long heritage text consisting of 10 books (*maṇḍalas*), 1028 hymns and 10522 verses. Michel Witzel[1] has described the Rigvedic text as good as any well preserved contemporary old inscription. It is the most authentic contemporary source of information for any subject of ancient knowledge systems, including the Archaeometallurgy of the ancient Indian civilization.

A complete text of the Rigveda is conveniently available in the Devanagari script with its standard transliteration in English online at the "Internet Sacred Text Archive" [2]. We have adopted this Rigveda text as the base reference in this Article. This site also provides an easily accessible English translation of the Rigveda by Ralph Griffith[3]. The reference of Rigveda's textual metal evidence (TME) is numbered by 3-digits, separated by a dot preceded by the abbreviation RV. The first digit refers to a Book (*maṇḍala*), the second digit to its hymn (*sūkta*) and the third digit to its verse (*ṛc*). Thus reference such as RV3.62.10 means that this text refers to Book 3, the Hymn 62 and Verse 10 of the Rigveda (RV).

We have constructed an overview of the Archaeometallurgy that existed and evolved in the Rigvedic period (RVP) based on our study of the available textual metal evidence (TME).

INTERNAL CHRONOLGY OF THE RIGVEDA

All scholars agree that RV Book 6 is the oldest (i.e. earliest) and RV Book 10 is the youngest ((i.e. latest). Talegeri[4, 5] classified the internal chronology of the RV, as shown below:

Early Rigvedic Period	Middle Rigvedic Period	Late Rigvedic Period
Early Family Books	Middle Family Books	Late Family Books
(In chronological order)	Maṇḍala 4	Maṇḍala 5
Maṇḍala 6	Maṇḍala 2	Late Non –family Books
Maṇḍala 3	Part of Maṇḍala 1	Maṇḍala 8
Maṇḍala 7		Maṇḍala 9
		Maṇḍala 10
		Most of Maṇḍala 1

We have adopted the above internal chronology of the RV for exploring the evolution of knowledge of metals in the Rigvedic Period (RVP). We have collated the numerous TME data from the Rigveda and studied how India's ancient metallurgy evolved over the long period of the Rigveda and if the pieces of textual metal evidence could provide logical clues of the internal chronology of Rigveda.

METALS KNOWN DURING THE RIGVEDIC PERIOD

Rigveda has credible pieces of textual metal evidence (TME), which establish that only two antique metals, namely gold (*hiraṇya*) and iron (*ayas*), were known. Whether *ayas* in the Rigveda means "Iron" or not remains a matter of contention and historical interest. There are different views regarding the meaning of that *ayas,* such as "metal in general" or "copper" or "bronze" or "gold", not "iron" in particular. In this paper, the term "*ayas*" means "iron". The word "*rajata*" occurs in the text RV8.25.22, and it means the "white colour" of a horse, not silver. Mac Donell[5] confirms that Rigvedic People were unacquainted with silver. We shall compile the pieces of TME related to Gold and Iron and discuss how these two antique metals were sourced, produced and used in the Rigvedic Period.

GOLD METALLURGY

Rigveda has hundreds of verses that refer to gold by the term "*hiraṇya"* and describe its unique attributes such as shine, glint, glitter, glow, and pleasing colours. The Hiraṇyagarbha Sūkta (RV10:121) refers to the golden womb as the one source of creation. The word *"hiraṇya"* used for gold gives a sense of eternity or imperishability. Rigvedic People viewed gold as a divine metal and associated it with their gods (deities) and described them as effulgent like gold or their body parts or their chariots made of gold.

The verse RV4.10.5 describes Agni (the Fire god) who looks look like gold (*rukmā*), and he shines like gold even in the night as follows:

तव सवादिष्ठाग्ने संद्रिष्टर इदा चिद अह्न इदा चिद अक्तोः |

tava svādiṣṭhāghne saṃdṛṣṭir idā cid ahna idā cid aktoḥ

शरिये रुक्मो न रोचत उपाके || 4.10.5

śriye rukmo na rocata upāke

The verse RV4.10.6 describes Agni (the Fire god) with a spotless body and possessing brilliance like gold:

घर्तं न पूतं तनूर अरेपाः शुचि हिरण्यम |

ghṛtaṃ na pūtaṃ tanūr arepāḥ śuci hiraṇyam

तत ते रुक्मो न रोचत सवधावः || 4.10.6

tat te rukmo na rocata svadhāvaḥ

The RV4.10.5 and RV4.10.6 are significant TME. The RV4.10.5 refers to gold by two names, *hiraṇya* and *rukmā*. The RV4.10.5 establishes that *rukmā* was a different type of gold with a higher shining and different hue than the *hiraṇya* type of gold. It seems that the *rukmā* type of gold was probably of higher purity as compared to *hiraṇya*. The use of the names *hiraṇya* and *rukmā* for gold continued in the later Vedic and Epic periods.

The verse RV2.35.10 describes the beauty of the god Apāṃ Napāt (son of waters) by using the metaphor of gold (*hiraṇyam*). The child god had a golden form, looked like gold, had a golden complexion, his birthplace was golden, and he got gold gifts.

हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्द्रगपांनपात सेदु हिरण्यवर्णः |

hiraṇyarūpaḥ sa hiraṇyasandṛghapāṃnapāt sedu hiraṇyavarṇaḥ

हिरण्ययात परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै || 2.35.10

hiraṇyayāt pari yonerniṣadyā hiraṇyadā dadatyannamasmai

Apāṃ Napāt refers to a title applied to the god of Fire, who, as a child, represents the fiery creating force emanating from the waters. Zoroastrian Avesta also uses the term Apāṃ Napāt as a creator of Mankind. Thus RV2.35.10 glorifies gold for its beauty. Rigvedic People associated gold with their deities in numerous ways, as given below:

Verse	Deity	Phrase	Meaning
RV6.16.38	Agni	*hiraṇya-sandṛšaḥ*	glowing like gold
RV6.71.4	Savitr	*hiraṇya-pāṇiḥ*	golden-handed
RV7.45.2	Savitr	*hiraṇyayā*	golden
RV4.3.1	Agni	*hiraṇya-rūpam*	with his golden colours
RV5.87.5	Maruts	*sva-rociṣa hiraṇyayāḥ*	self–luminous decked with gold
RV1.43.5	Rudra	***hiraṇyam-iva rocate***	refulgent as bright gold

RV 1.46.10	Sun	***hiraṇyayā prati sūryaḥ***	it appeared as if it were gold
RV10.20.9	Indra	***hiraṇya-rūpam***	with hues of gold
RV10.107.7	Dakṣiṇā,	*candramuta hiraṇyam*	glittering gold
RV 1.167.3	Maruts	***hiraṇya-nirnik***	decked with gold

Chariots had high importance in the RVP. Rigvedic People visualized their deities riding on chariots having their various parts made of gold**.** The verse RV6.29.2 refers to Indra (thunder god), who was ready to ride his golden chariot for the journey:

आयस्मिन हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः | 6.29.2

āyasmin haste naryā mimikṣurā rathe hiraṇyaye ratheṣṭhāḥ

The above RV6.29.2 is the earliest verse using the term "*hiraṇya*" for gold in the earliest Book 6 of the Rigveda. Hiraṇya is the oldest term for gold, and it is also used in the Avesta by the word "zaranya".

Another verse, RV8.5.28, prays to Aśvins (sons of the Sun god) to ascend in the sky with gold seat (*hiraṇya-vandhuram*) and with reins of gold (*hiraṇya-abhīšum*).

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना | 8.5.28

rathaṃ hiraṇyavandhuraṃ hiraṇyābhīśumaśvinā

The verse RV1.35 2 is to Savitr (Sun god) who appear in his golden chariot and takes care of every creature:

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्न अम्रतम मर्त्यं च |

ā kṛṣṇena rajasā vartamāno niveśayann amṛtam martyaṃ ca

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन || 1.35 2

hiraṇyayena savitā rathenā devo yāti bhuvanāni paśyan

Many other similar verses visualise gods riding their gold chariots (RV6.66.1, RV3.44.4, RV3.44.5, RV4.1.8, RV4.44.4, RV4.44.5, RV1.56.1, RV 1.30.16, RV1.56.1, RV1.139.4, RV 8.1.24, RV8.33.4, and RV8.46.24).Some verses refer to the parts of god's chariots such as seats (RV4.46.4, RV8.22.9), wheels and axles (RV6.56.3, RV8.5.29, and RV1.105.1) and flag poles (RV8.5.29 and RV1.35.4), and mane and rein of the horses (RV8.22.5, RV1.122.14) made of gold.

All the verses mentioned above express the Rigvedic People's aspirations to be rich with gold and acquire similar gold objects possessed by their deities. The

verse RV5.81.1 gives an insight as to how the Rigvedic people used to imagine using their mind and thought:

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बर्हतो विपश्चितः |

yuñjate mana uta yuñjate dhiyo viprā viprasya bṛhato vipaścitaḥ

वि होत्रा दधे वयुनाविद एक इन मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः || 5.81.1

vi hotrā dadhe vayunāvid eka in mahī devasya savituḥ pariṣṭutiḥ

Vedic people built their metal technology framework from scratch through the combination of mind and thought.

SOURCES OF GOLD

Gold is a known metal in the earliest RV Book 6. This fact implies that Rigvedic People might have initially picked up gold nuggets from the alluvial sands in the pre-Rigvedic period. There is no evidence of gold sourcing from the river sand beds in the Early Rigvedic Period (RV Books 3, 6 and 7) and even in the Middle Rigvedic Period (RV Books 4 and 2). Many verses confirm the discovery and mining of placer gold deposits in the Indus River's sand beds in the late Rigvedic period (RV Books 5,8,9,1 and 10). The verse RV5.75.2 and RV5.75.3 presents the specific evidence that the Indus River was the path (source) of gold (*hiraṇya-vartanih*):

दस्रा **हिरण्यवर्तनी** सुषुम्ना **सिन्धु**वाहसा माध्वी मम शरुतं हवम || 5.75.2

dasrā hiraṇyavartanī suṣumnā sindhuvāhasā mādhvī mama śrutaṃ havam

रुद्रा **हिरण्यवर्तनी** जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम शरुतं हवम || 5.75.3

rudrā hiraṇyavartanī juṣāṇā vājinīvasū mādhvī mama śrutaṃ havam

The verse RV 8.26.18 confirms the continuation of the Indus River, which was the path (source) of gold (*hiraṇya-vartanih*) after the RV Book 5.

उत सया शवेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम |

uta syā śvetayāvarī vāhiṣṭhā vāṃ nadīnām

सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः || 8.26.18

sindhurhiraṇyavartaniḥ

In the above TME, *hiraṇya-vartani,* in a modern sense, means gold mine site located in the River's sand beds.

Another verse, RV9.41.4, describes the discovery of a new place at the banks of the Indus River, which was abundantly rich with a wealth of gold, cows and horses:

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो **हिरण्यवत** |

ā pavasva mahīmiṣaṃ ghomadindo hiraṇyavat

अश्वावद वाजवत सुतः || 9.41.4

aśvāvad vājavat sutaḥ

The above RV9.41.4 is a highly significant TME as it describes a new place at the Indus Riverbank, which was rich in gold, horses, and cows. It seems that the Rigvedic People migrated in large numbers to newly discovered goldfields at the beginning of the Late Vedic Period. Rigvedic people who settled at the new place on the Indus valley banks became highly prosperous from gold mining and trading.

The verses RV1.92.18 and RV10.75.8 describe prosperity the newly found place of the Indus River as follows:

सवश्वा **सिन्धुः** सुरथा सुवासा **हिरण्ययी**
सुक्तावाजिनीवती |10.75.8

svaśvā sindhuḥ surathā suvāsā hiraṇyayī
sukṛtāvājinīvatī

एह देवा मयोभुवा दस्रा **हिरण्यवर्तनी** |
eha devā mayobhuvā dasrā hiraṇyavartanī
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये || 1. 92.18

uṣarbudho
vahantu somapītaye

The verses RV10.75.8 and RV1.92.18 specifically glorify their new place and high life. The newly found place at the banks of the Indus River was rich with gold, steeds, chariots, and clothing material. Rigvedic People had become highly prosperous and enjoying their high life by drinking Soma. Their Wonder-Workers were skillfully mining gold from the newly found site at the banks of the Indus River. Rigvedic People might have continued migrating from Indus Valley to further westwards in Afganistan and Iran during the late Rigvedic period to pursue sourcing or trading gold and gems.

Rigvedic People were intensively searching for new sources of gold. The verse RV1.117.5 beautifully described a new find of gold when the ground was dug at some site. Gold in the veins of hard quartz rocks is described as like one slumbering in the bosom, or like when the Sun dwelling in the darkness:

सुषुप्वांसं न निर्तेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि
कषियन्तम |

suṣupvāṃsaṃ na nirṛterupasthe sūryaṃ
na dasrā tamasi kṣiyantam
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ||
1.117.5

śubhe rukmāṃ na darśataṃ
nikhātamudūpathuraśvinā vandanāya.

The RV1.117.5 is a significant TME as the Wonder-Workers of the Rigvedic society made enormous efforts to dig out gold-bearing rocks from the ground and discover the new gold source. This new find of gold had a higher shining as compared to *hiraṇya*. Gold sourced from

the ground was called by a new name, "*rukmā*". We infer that Rigvedic People had searched gold-bearing rock deposits and started gold mining from vein deposits in hard rocks in the Late Rigveda Period.

All the verses mentioned above indicate that the Rigvedic People intensely searched for gold's new sources during the Rigvedic period. The primary source of gold was from the sand beds of the Indus River. The discovery of gold in hard rocks was a significant development in gold metallurgy progress during the Late Vedic period. The above verses are significant pieces of textual metal evidence (TME) as these establish that there were specific mining sites with a high concentration of gold on the Indus River banks. None of the RV verse gives details of gold mining techniques. However, we infer that the skills for mining gold from sand beds by panning, drudging, and washing were well–established

USES OF GOLD

Gold as a Wealth

In the Rigvedic society, cows and horses were the foremost wealth. Gold was a new wealth, and it occupied a pride place in the Rigvedic People's lives. Rigvedic People prayed to their deities to bestow on them gold to give gifts and donations for their rituals.

The Rigvedic deities themselves were the receiver of gold treasure. The verse RV3.34.9 refers to Indra, who had received a treasure of gold after defeating his enemy Dasyus:

हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून परार्यंवर्णमावत || 3.34.9

hiraṇyayamuta bhoghaṃ sasāna hatvī dasyūn prāryaṃvarṇamāvat

The Rigvedic deities were also the bestowal of the gold wealth. The verse RV7.66.8 refers to Vedic singers requesting from Mitra-Varuṇa to bestow upon them a wealth of gold for making rich them in the society:

राया **हिरण्यया** मतिरियमव्रकाय शवसे | 7.66.8

rāyā hiraṇyayā matiriyamavṛkāya śavase

In the verse RV2.34.11, Rigvedic People pray to Maruts to bestow upon them the wealth of gold which is extolled by everyone (*hiraṇya-varṇān*):

हिरण्यवर्णान ककुहान यतस्रुचो बरह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे || 2.34.11

hiraṇyavarṇān kakuhān yatasruco brahmaṇyantaḥ śaṃsyaṃ rādha īmahe

In several verses, the terms *hiraṇya* or *hiranyāni* mean gold pieces or lumps used to make ornaments or preserve gold lumps as wealth. Rigvedic People fully

recognized gold as a new type of wealth and developed a passion for it.

Personal Ornaments

Rigvedic People loved gold and were passionate about gold ornaments. They visualized their deities adorned with a variety of ornaments. Rigvedic People had an intense yearning to possess the gold ornaments, and they prayed to their deities to bestow upon them the divine wealth of gold.

The verses RV7.56.13 and RV 2.34.3 refer Maruts adorned with ornaments on their chests (*vakṣassu rukmā*) and their heads (*hiraṇya –śiprā*) respectively:

अंसेष्वा मरुतः **खादयो** वो वक्षस्सु **रुक्मा** उपशिश्रियाणाः | 7.56.13

aṃseṣvā marutaḥ khādayo vo vakṣassu rukmā upaśiśriyāṇāḥ

हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पर्क्षं याथ पर्षतीभिः समन्यवः || 2.34.3

hiraṇyaśiprā maruto davidhvataḥ pṛkṣaṃ yātha pṛṣatībhiḥ samanyavaḥ

The verse RV5.54.11 commends that people should wear gold ornaments on chest (*vakṣasḥ-su rukmā*), anklets (*ṛṣṭayaḥ patsu khādayo*) and head (*śiprāḥ śīrṣasu hiraṇyayīḥ*):

अंसेषु व **रष्टयः पत्सु खादयो वक्षस्सु रुक्मा** मरुतो रथे शुभः |

aṃseṣu va ṛṣṭayaḥ patsu khādayo vakṣassu rukmā maruto rathe śubhaḥ

अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः **शिप्राः शीर्षसु विता हिरण्ययीः** || 5.54.11

aghnibhrājaso vidyuto ghabhastyoḥ śiprāḥ śīrṣasu vitatā hiraṇyayīḥ

Maruts deities, in the verse RV5.60.4, are envisioned adorned with gold ornaments like that of a young suitor from a wealthy family:

वरा इवेद रैवतासो **हिरण्यैर** अभि सवधाभिस तन्वः पिपिश्रे | 5.60.4

varā ived raivatāso hiraṇyair abhi svadhābhis tanvaḥ

The verse RV1.122.14 is a prayer to Visvadeva god to bestow upon the people gold ornaments for their ears (*hiraṇyakarṇaṃ*) and neck (*maṇighrīvam*):

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः |1.122.14

hiraṇyakarṇaṃ maṇighrīvamarṇastan no viśve varivasyantu devāḥ

The verse RV1.166.10 refers to the practice of wearing gold ornaments (*rukmā*) on hands (*bāhuṣu*) and chest (*vakṣassu*) as follows:

भूरीणि भद्रा नर्येषु **बाहुषु वक्षस्सु रुक्मा** रभसासो अञ्जयः |1.166.10

bhūrīṇi bhadrā naryeṣu bāhuṣu vakṣassu rukmā rabhasāso añjaya

The verse RV10.85.8 refers to the bride's

head-ornament by the term *kurira* as follows:

सतोमा आसन परतिधयः **कुरिरं** छन्द ओपशः |10.85.8

stomā āsan pratidhayaḥ kuriraṃ Chanda opaśaḥ

The personal ornaments in the early period of Rigveda were of simple design. Rigveda frequently uses the term *khādi–hasta* to denote ornaments worn on hands such as armlets (RV7.56.13 and RV1.166.9), anklets (RV5.54.11) or rings (RV1.168.3). *Rukmā* was attractive, and for this reason, rukmā in the verses RV5.54.11, RV1.166.10 refers to ornaments as well as gold.

The verses RV1.33.8 and RV1.182.4 refer to ornaments encrusted with precious stones *hiraṇyena maṇinā* and *jaritū ratninīṃ* respectively:

चक्राणासः परीणहं पर्थिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः | 1.33.8

cakrāṇāsaḥ parīṇahaṃ pṛthivyā hiraṇyena maṇinā śumbhamānāḥ

वाचं-वाचं जरितू रत्निनीं कर्तमुभा शंसं नासत्यावतं मम || 1.182.4

vācaṃ-vācaṃ jaritū ratninīṃ kṛtamubhā śaṃsaṃ nāsatyāvataṃ mama

The RV1.33.8 and RV1.182.4 are significant TME as these suggest that ornaments making skills had grown from simple to intricate form.

The textual metal evidence shows that using gold for making the ornaments began during the RV Book 7 and progressed slowly in the Middle Rigvedic Period. The use of gold for making a variety of ornaments for adorning different parts of the body of men and women had grown and become a common practice in the Late Rigvedic Period when gold availability increased from the Indus River's sand beds.

Niṣkas

Rigveda frequently refers to gold in the form of *niṣkas*. It seems that the metalworkers were fabricating gold pieces into a standardized form, and these were called niṣkas. These *niṣkas* had become a way of possessing gold wealth in lumpy form and using it as a precious gift or donation items. Several *niṣkas* were used like pendants to make necklaces.

The most valuable ornament in the Rigveda was a necklace made of *niṣkas*. The verse RV2.33.10 refers to powerful god Rudra adorned with the most beautiful necklace with many shades:

अर्हन बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन निष्कं यजतं विश्वरूपम | 2.33.10

arhan bibharṣi sāyakāni dhanvārhan niṣkaṃ yajataṃ viśvarūpam

Another verse, RV5.19.3 which refers to a *niṣkas* necklace (*niṣka-grīva*) worn by a seer named Brhaduktha:

निष्कग्रीवो बर्हदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः || 5.19.3

niṣkaghrīvo bṛhaduktha enā madhvā na vājayuḥ

The verse RV1.126.2 refers to a precious gift consisting of 100 *niṣkas* along with 100 steeds and 100 bulls given by King Bhavayavya to his priest Kakshivat:

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान परयतान सद्य आदम |

śataṃ rājño nādhamānasya niṣkāñchatamaśvān prayatān sadya ādam

शतं कक्षीवानसुरस्य गोनां दिवि शरवो.अजरमा ततान || 1.126.2

śataṃ kakṣīvānasurasya ghonāṃ divi śravo.ajaramā tatāna

There is no evidence of the use of gold as *niṣkas* in the Early Rigvedic Period. The earliest evidence of the use of gold *as niṣkas* exists only in the Middle Rigvedic Period. We infer that *niṣkas* and *niṣkas* necklaces had become novel items, and their large scale manufacturing had progressed in the Late Rigvedic Period. The use of *niṣka*s like coinage advanced in the later periods of the Late Vedic Literature and Vālmīki Rāmāyaṇa.

GOLD PRODUCTION

The very first verse of the Rigveda uses the word *agnimile*, which means I adore the Fire. The Rigvedic People had mastered the skills to operate the fireplaces as they used to perform fire rituals (*yajnas*) in their daily lives.

Gold recovered from the river sand beds mainly was in very fine or dust form and stored in small bags. The verse RV6.47.23 refers to King Divodasa who gave a gift to Rishi Garga consisting of ten bags (*daśa kośān*) filled with gold dust, ten lumps of gold (*daśo hiraṇyapiṇḍān*), ten horses and ten garments:

दशाश्वान दश कोशान दश वस्त्राधिभोजना |

daśāśvān daśa kośān daśa vastrādhibhojanā

दशो हिरण्यपिण्डान दिवोदासादसानिषम || 6.47.23

daśo hiraṇyapiṇḍān divodāsādasāniṣam

The RV6.47.23 is a highly significant TME as it refers to *hiraṇyapinda*, which means lumps of gold. This TME implies that gold, which was in fine or dust form, was melted down and cast into a lump form (*hiraṇyapinda*) even in the Early Rigveda Period.

There is a verse RV6.3.4 which reveals

that specialized craftsman (*dravi*) used to melt (*drāvayati*) gold by burning wood:

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा |

tighmaṃ cidema mahi varpo asya bhasadaśvo na yamasāna āsā

विजेहमानः परशुर्न जिह्वां **दरविर्न दरावयति** दारु धक्षत || 6.3.4

vijehamānaḥ paraśurna jihvāṃ dravirna drāvayati dāru dhakṣat

The verse RV6.3.4 is highly significant TME as it refers to the gold melting process practised in the Early Rigveda Period.

For the melting of gold, a furnace was used. The verse RV5.9.5 refers to *dhmātarīi,* who blew the furnace and controlled the fire:

अध सम यस्यार्चयः सम्यक संयन्ति धूमिनः |

adha sma yasyārcayaḥ samyak saṃyanti dhūminaḥ

यद ईम अह तरितो दिव्य उप **धमातेव धमति शिशीते धमातरी** यथा || 5.9.5

yad īm aha trito divy upa dhmāteva dhamati śiśīte dhmātarī yathā

The RV5.9.5 provides textual metal evidence of advancement in gold melting furnaces' design and operation in the Late Rigveda Period.

Based on the TME mentioned above, we infer that Metalworkers had discovered the gold melting, pouring and casting techniques in the Early Rigveda Period. Furnaces with air blowing techniques reached the temperature needed for melting gold. Rigvedic people had developed all the necessary implements for melting gold, such as crucibles and tongs. The metalworkers had mastered the gold melting techniques during the late period of the Rigveda. There is no evidence to suggest that the gold refining process was refined to increase the purity of gold in the entire period of Rigveda.

GOLD METALWORKING

Rigveda does not have any text that refers explicitly to gold metalworking processes. Gold is highly malleable and was easy to hammer into a variety of shapes. The textual evidence related to *niṣkas* shows the progress in gold metalworking from the Early Rigvedic Period to the Late Vedic Period. It is significant to note that there is no evidence of gold sheet metalworking to make vessels. It appears that Biswas[6] mistakenly refers to a pitcher made of gold with a reference of the verse RV1.119.17 as given below:

हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन || 1.119.7

hiraṇyasyeva kalaśaṃ

nikhātamudūpathurdaśame aśvināhan

In the above verse, *hiraṇyasyeva kalaśaṃ* mean a pitcher full of gold, not a pitcher made of gold. Rigveda does not refer to any vessel made of gold. There is no evidence of the gold sheet metalworking process during the entire Rigvedic period.

Rigveda refers to the skilled metalworkers by the term "*karmāra"* (RV9.112.2) and *sukarman* (RV4.2.17):

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो ऽयो न देवा जनिमा **धमन्तः** |

sukarmāṇaḥ suruco devayanto 'yo na devā janimā dhamantaḥ

शुचन्तो **अग्निं वव्रधन्त** इन्द्रम ऊर्वं गव्यम परिषदन्तो अग्मन || 4.2.17

śucanto aghniṃ vavṛdhanta indram ūrvaṃ ghavyam pariṣadanto aghman

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम |

jaratībhiroṣadhībhiḥ parṇebhiḥ śakunānām

कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिछतीन्द्रायेन्दो परि सरव || 9.112.2

kārmāro aśmabhirdyubhirhiraṇyavantamichatīndrāy endo pari srava

The above RV9.112.2 is a significant TME as it refers to skilled Metalworkers (*kārmāra*) operating furnaces for gold melting using different types of seasoned woods and air fans made from bird feathers. Thus, there were Metalworkers' *kārmāra*, *dravi* and *sukarman* who provided different melting and metalworking skills. It seems sukarmāṇa evolved as suvarnakār (goldsmith) at a later time.

AN OVERALL PERSPECTIVE OF GOLD METALLURGY

The term *hiraṇya* is the oldest term for gold used in Rigveda's oldest book (Maṇḍala 6). This evidence suggests that pre-Rigvedic people had found gold nuggets on the river sand beds. Rigvedic People associated gold with their deities and considered gold as divine metal. Rigveda had not speculated or given any insight into how gold had originated on the earth's surface.

Gold was sourced mainly from the alluvial placer deposits, precisely that of the Indus and Sindhu River. It seems that the techniques for mining and recovery of gold from the sand beds progressively developed and well established by the time of the Late Rigvedic Period. The intense search led to the finding of the occurrence of gold in vein deposits of quartz rocks in the Late Rigvedic Period. A new kind of gold of different hue and

shine was found in the hard rocks deposits. Rigvedic people gave it a new name, *"rukmā*", which means high shine. We infer that the *rukmā* type of gold recovered from hard rocks had higher purity, giving it a different hue and higher shine than *hiraṇya*. The discovery of gold in the Indus River's sand beds and the hard rocks was a step-change in developing gold metallurgy in the Late Rigvedic period.

The raw gold sourced from the river sand beds was mostly in fine fragments or dust form. The Metalworkers had developed furnaces to reach the temperatures needed to melt gold (1064°C) by air blowing techniques. The practice of gold melting and casting into a lumpy form (*hiraṇyapinda*) was an early breakthrough in the advancement of metallurgy in ancient India.

The raw gold lumps were hammered into a variety of ornaments of simple design, *niṣkas* and garlands of *niṣkas* by skilled Metalworkers called *sukarman*. It seems that *niṣka* was a well-shaped gold piece like a pendant made by direct casting or hammering during the Middle Rigvedic Period. The skills of making intricate jewellery encrusted with gemstones got developed only in the Late Rigvedic Period. We infer that gold objects such as ornaments and *niṣkas* were made in large quantities in the Late Rigvedic Period when the gold supply had increased from the Indus River's sand beds. The gold working processes did not progress for making utensils or woven network type of objects,

The metallurgy of gold got well-founded during the long period of the Rigveda. Gold metallurgy had rapidly moved from its initial "Native Stone Stage" to the "Native Metal Stage" as gold could be melted and cast into a lumpy form at the Early Rigvedic Period.

A synopsis of an overall perspective of the Gold Archaeometallurgy of India in the Rigvedic period is presented below:

Gold Origin	Gold Sources	Gold Production	Gold Working	Gold Objects
No speculation No insight	Mining from the sand- beds of the Indus River Discovery of Gold in hard	Melting Furnaces with air blowing No refining	Casting Hammering No Sheet work No Wirework Proto-Goldsmiths	Wealth *hiraṇyapinda* *niṣkas* *niṣkas* necklaces Variety of Ornaments

IRON METALLURGY

Iron metallurgy started with discovering a naturally occurring metal called "*ayas*" in the Rigvedic Period (RVP). Ayas was harder and stronger than gold. It was malleable and could be hot forged. Ayas was found to be a suitable material for tools and weapons that required hardness and sharpness.

Meaning of *Ayas*

Most of the scholars have translated *ayas* as iron. Whether *ayas* in the Rigveda means "iron" or not remains a matter of contention amongst scholars. We give below the views of some eminent scholars:

MacDonell[6], a noted Sanskrit scholar, argues that *ayas* in the Rigveda refers to bronze or copper rather than to iron as follows:

"The metal which is most often referred to in the Rigveda next to gold is called ayas (Latin, aes). It is a matter of no slight historical interest to decide whether this signifies "iron" or not. In most passages where it occurs, the word appears to mean simply "metal." In the few cases where it designates a particular metal, the evidence is not very conclusive; but the inference which may be drawn as to its colour is decidedly in favour of its having been reddish, which points to bronze and not iron. The fact that the Atharvaveda distinguishes between "dark" ayas and "red" seems to indicate that the distinction between iron and copper or bronze had only recently been drawn. It is, moreover, well known that in the progress of civilization, the use of bronze always precedes that of iron. Yet it would be rash to assert that iron was altogether unknown even to the earlier Vedic age" [6]

Biswas[7], a renowned professor of

metallurgy, considers that the word *ayas* probably denotes copper or copper alloys:

"The word ayas in the Ṛgveda (1.57.3, 1.163.9, 4.2.17, 6.3.5.10.53.9-10 etc.) means metal in general, not iron in particular. In the Ṛgvedic age, it probably corresponded to copper and its alloys. In the subsequent Vedic literature, copper was mentioned as the red metal and iron as the black metal. This also proves that ayas in the Ṛgveda could not mean iron specifically" [7]

Chakrabarti[8], an eminent professor of South Asian Archaeology, expresses his views on the controversy about the meaning of *ayas* as follows:

"It should be clear that any controversy regarding the meaning of ayas in the Ṛgveda or the problem of the Ṛgvedic familiarity or unfamiliarity with iron is pointless. There is no positive evidence either way. It can mean both copper-bronze and iron and, strictly based on the contexts; there is no reason to choose between the two"[8]

We shall discuss hereunder three different points of views with regards to the meaning of "ayas" in the Rigveda, as follows:

The first view is that "*ayas*" means "metal in general" and not "iron" in particular. The Rigvedic texts have clearly distinguished two metals, *hiraṇya* and *ayas,* by their specific names and applications. Hard and sharp tools were made of only *ayas* and not of gold, whereas ornaments were always made of only *hiraṇya* and not of *ayas*. In our opinion, *ayas* in the Rigveda denotes a hard metal, not merely a "metal in general".

The second point of view is that "*ayas*" means explicitly copper or bronze, but not iron. This view arises from the interpretation of the word "*ayo-daṃṣṭra*" for Agni in the verses RV10.87.2 and RV1.88.5, as given below:

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप सप्रश जातवेदःसमिद्धः | 10.87.2

ayodaṃṣṭro arciṣā yātudhānānupa spṛśa jātavedaḥsamiddhaḥ

पश्यन हिरण्यचक्रान**योदंष्ट्रान** विधावतो **वराहून** || 1.88.5

paśyan hiraṇyacakrānayodaṃṣṭrān vidhāvato varāhūn

McDonnell & Keith, in their Vedic Index[9], cite Zimmer (Altindisches Leben, 52), who calls Agni (the god of Fire) by the name

ayo-daṃṣṭra and interprets personified Agni 'with teeth of ayas'. McDonnell & Keith infer that the word *ayas* favours the sense of bronze rather than iron in consonance with the flames' colour. The meaning of *ayas* as bronze based on the colour of the fire or flame is contentious.

Neogi[10] points out that the word *ayo-daṃṣṭra* in the text RV10.87.2 is an adjective of Agni, and he interpreted it for the sharpness of the tongues of flames rather than its colour. He agrees with Wilson's translation of *ayo-daṃṣṭra* as "teeth of iron". Iron reflects the strength and sharpness of teeth amongst a mouthful of flames. In our view, *ayas* in the context of the RV10.87.2 refers to hot and glowing iron amidst flames. Rigvedic People had known that iron, on heating to a higher temperature, progressively glowed to dull red through orange and yellow to white colour. In any case, iron has a much higher melting point than copper or bronze and has a better chance to survive as teeth amidst a mouthful of flames.

The verse RV1.88.5 relates to Maruts and has no context of Agni or its flames. Griffth[3] translates the word ayo-*daṃṣṭra* in this verse means' tusks of iron' of the wild boars (*varāhūn*), not as 'teeth of iron' of Agni. Griffith's translation makes more sense as it merely means that the tusks of wild boars were as strong as iron. The RV1.88.5 refers to two different metals - Iron and Gold, used for two different objects, i.e. iron tusks (*ayo-daṃṣṭrān*) and golden wheel (*hiraṇya-cakrān*).

If bronzes were invented in Rigveda, it would imply that copper and tin had already been discovered in Rigveda. Suppose *ayas* meant copper or bronze, why there was no single reference in the entire Rigveda that refers to copper and tin as different metals or objects such as a bead or an ornament or a plumb, or a small ritual vessel made of *ayas*. In our opinion, the contention that *ayas* means copper or bronze is not based on any evidence but on consideration of European civilization's history, where the use of bronze always preceded that of iron.

It should be recognized that whenever a new metal or its different type was discovered, it was given a new name that described some attribute of the metal in the Rigveda and later Vedic period. The oldest word in the Rigveda for gold is *hiraṇya*, which means it is imperishable.

When a different kind of gold was discovered in Rigveda, it was given a new name, '*rukmā*, which conveys its distinguishing characteristic of higher brightness than the *hiraṇya* type of gold. When copper was discovered in the Late Vedic Period, it was given a specific name, "*lohāyasa*" or *"lohita",* indicating that copper was a red colour metal. If the *ayas* in the Rigveda was copper or bronze, objects such as domestic sharp tools and weapons of *lohāyasa* or *lohita* should have been referred to in the Late Vedic Period. No single textual evidence refers to any object made of copper or bronze in the corpus of Late Vedic Literature. There should be a consensus among the Indologist that antique metals other than gold and meteoric iron, such as silver, lead, copper, and tin, were discovered only in the later period after the Rigveda composition.

It is intriguing as to why the scholars have failed to highlight the fact that why the use of the Rigvedic term *ayas* continued for iron objects during the vast periods of the Late Vedic Literature and Vālmīki Rāmāyaṇa. When different kinds of iron (ayas) with black and swarthy colours were found in their natural occurrence, they were identified by their new names like *karṣṇāyasa*, *syāmāyasa* or *śyāma* in the Late Vedic Period. It should be recognized that *karṣṇāyasa* or *śyāma* are synonymous words for *ayas* in the total sense of Iron metal and to its consistent applications for making similar hard and sharp objects from Rigveda to the period of Vālmīki Rāmāyaṇa.

The third view is scholastic which interprets "*ayas*" as gold in the specific context of the two verses RV5.62.8 and RV5.62.7, as given below:

हिरण्यनिर्णिग अयो अस्य सथूणा वि भराजते दिव्य अश्वाजनीव | 5.62.7

hiraṇyanirṇigh ayo asya sthūṇā vi bhrājate divy aśvājanīva

हिरण्यरूपम उषसो वयुष्टाव **अयस्थूणम** उदिता सूर्यस्य | 5.62.8

hiraṇyarūpam uṣaso vyuṣṭāv ayasthūṇam uditā sūryasya

In the above verses, the keyword is *aya-sthūṇa*, used for the car seat's pillars built in Mitra and Varuna's chariots. Sāyanāchārya[11] and McDonnell[9] have interpreted the keyword *aya-sthūṇa* for the car seats' pillars made of gold. It seems the meaning of "*ayas*" as "gold" is derived from the golden appearance at the flash of dawn or Sunset. The terms *ayas* has the

consistent meaning of iron reflecting its property of strength rather than the colour at the flash at the dawn or setting of the Sun. We emphasize that *aya-sthūṇā* refers to pillars of iron which symbolizes strength and stability. Moreover, the meaning of *aya*s for gold cannot be justified when *hiraṇya* was also used for a different gold object in the above verses and throughout Rigveda.

The correct interpretation of two keywords, *ayo-daṃṣṭra* and *aya-sthūṇā* is that teeth (*daṃṣṭra*) and pillars (*sthūṇā*) were made of iron. Teeth of *ayas* (iron) indicate the sharpness of teeth, and pillars of *ayas* (iron) reflect its load-bearing strength rather than the colours of the flames or Sun at setting or at dawn in the context of the verses mentioned above.

None of the verses in the Rigveda has described the colour of *ayas*, which created a lack of positive internal evidence regarding the meaning of *ayas* as iron. We have found new textual evidence in the mystic verses RV6.3.5 and RV6.47.10, which, upon decoding, explains how *ayas* originated on the earth as follows:

स इदस्तेव परति धादसिष्यञ्छिशीत **तेजो.अयसो न धाराम** |

sa idasteva prati dhādasiṣyañchiśīta tejo.ayaso na dhārām

चित्रध्रजतिररतिर्यो **अक्तो**र्वेर्न दरुषद्वा रघुपत्मजंहाः || 6.3.5

citradhrajatiraratiryo aktorverna druṣadvā raghupatmajaṃhāḥ

इन्द्र मळ मह्यं जीवातुमिछ चोदय**धियमयसो न धाराम** |

indra mṛḷa mahyaṃ jīvātumicha codaya dhiyamayaso na dhārām

यत किं चाहं तवायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कर्धि मा देववन्तम || 6.47.10

yat kiṃ cāhaṃ tvāyuridaṃ vadāmi tajjuṣasva kṛdhi mā devavantam

According to Sāyanāchārya[11], the verses RV6.47.10 and RV6.3.5 allude to a cosmic impact event, which caused "shower of iron swords and javelin" (अधोमयस्य खड्गधाराम् *adhomayasya khaṅgadhārām*, and अधोमयस्य परश्वर्देधाराम् *adhomayasya paraścardedhārām*) on earth. Sāyanāchārya's insight leads us to go further into its scientific meaning. In our view, the above verses refer to a shower of iron meteorites stones on earth from the sky. Both the above verses probably refer to a rare cosmic event of iron meteorites shower from the sky that might have happened in the pre-Rigvedic period. The verse RV6.3.5 describes a spectacular

shower of the asteroid bodies (*tejaḥ*) of meteoric iron (*ayasaḥ*) on earth from the sky. The verse RV6.47.10 seeks protection of life during the cataclysmic event of the shower of iron meteorites that might occur in future. These two verses are the most significant pieces of textual metal evidence (TME) internal to the Rigveda and contain insights into ayas' meaning, which could only be meteoric iron. Rigvedic People had found sites where they could collect the meteoric iron pieces and lumps and use them to make hard and sharp objects.

Summing up, the term *ayas* consistently refers to naturally occurring iron found in stone form and sourced from iron meteorite deposits' debris. In the Rigvedic texts, *ayas* symbolizes strength and denotes naturally occurring meteoric iron.

Iron as a "Symbol of Strength"

The Rigvedic textual evidence establishes that iron was the most antique metal after gold in ancient India's metal history. Rigvedic People were highly excited about their discovery of meteoric iron (*ayas*), and they recognized its high strength property. Accordingly, Rigvedic People imagined their god's body parts such as teeth, jaws and cheeks of iron to reflect their physical strength.

The verse RV6.71.4 refers to the cheeks of the Savitr (Sun) deity, which were like that of Iron:

अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरिवामम || 6.71.4

ayohanuryajato mandrajihva ā dāśuṣe suvati bhūrivāmam

Griffith[3] mistranslates the word "*ayaḥ-hanuḥ*" as brass-cheeks rather than iron-cheeks. Sun god could not have brass-cheeks when brass was unknown in Rigveda. It is known that iron glows from red to orange to white colours when it is heated. If "*ayaḥ -hanuḥ*" of the Sun god is elucidated as glowing hot iron-cheeks, making allegorical colour makes sense.

The verse RV4.37.4 refers to Ṛbhus deities whose strong jaws were made of iron (*āyaḥ-šiprāḥ*):

पीवोश्वाः शुचद्रथा हि **भूतायःशिप्रा** वाजिनः सुनिष्काः | 4.37.4

pīvoaśvāḥ śucadrathā hi bhūtāyaḥśiprā vājinaḥ Suniṣkāḥ

The physical strength of Indra is symbolically likened to that of iron in the verses RV1.56.3 and RV10.96.8, as follows:

येन शुष्णं **मायिनमायसो** मदे दुध्राभूषु रामयन नि दामनि || 1.56.3

yena śuṣṇaṃ māyinamāyaso made
dudhraābhūṣu rāmayan ni dāmani

हरिश्मशारुर्हरिकेश **आयसस्तुरस्पेये** यो हरिपावर्धत | 10.96.8

hariśmaśārurharikeśa āyasasturaspeye yo haripāavardhata

Rigvedic People moved their imagination from their deities to their powerful animals and birds. The verse RV1.163.9 refers to a horse with iron feet (*asya pādāḥ)*:

हिरण्यश्ङ्गो.अयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत | 1.163.9

hiraṇyaśṛṅgho ayo asya pādā manojavā
avara indra āsīt

The above RV1.163.9 perhaps refers to iron horseshoes used to protect a horse's hooves and make him run faster.

Another verse, RV10.99.8, refers to the Hawk armed with his sharp and strong iron claws (*ayaḥ-apāṣṭiḥ*) to slay the Dasyus:

उप यत सीददिन्दुं शरीरैः शयेनो.**अयोपाष्टिर्हन्तिदस्यून** || 10.99.8

upa yat sīdadinduṃ śarīraiḥ
śyeno.ayopāṣṭirhantidasyūn

In all the verses mentioned above, the metaphor of iron symbolizes its strength and sharpness.

Iron Weapons for Deities

Rigvedic People started visualizing that their deities possessed weapons made of iron. Indra annihilates Namuchi and Vritra demons by using the most potent weapon ***vajraḥ*** (thunderbolt), and bringing much-needed light and moisture back to the earth. The verse RV1.80.12 provides the most vivid description of thunderbolt as given below:

अभ्येनं **वज्र आयसः** सहस्रभ्रिष्टिरायतार्चन्न || 1.80.12

abhyenaṃ vajra āyasaḥ
sahasrabhṛṣṭirāyatārcann

The above verse RV1.80.12 refers to thousand sharp spikes on the surface (*sahasra-bhṛṣṭiḥ*) of the thunderbolt (*vajra*) wholly made of iron. There are several other references in the Rigveda which describe iron weapons used by Indra:

Verse	Texts related to weapons	Text Meaning related to weapons
RV1.32.12	*sṛkam*	Perhaps a lance or bolt of Iron
RV1.52.8	*vajram āyasam*	Thunderbolt of Iron
RV1.121.9	*āyasám práti vartayo*	Iron missile

RV10.96.3	*vajraḥ haritaḥ yaḥ āyasaḥ*	Thunderbolt of Iron, gold-coloured
RV10.96.4	*hari-šipraḥ yaḥ āyasaḥ*	Thunderbolt of Iron with a yellow jaw
RV10.99.6	*asya tritaḥ*	Shaft with a tip of Iron
RV10.113.5	*vajram āyasaṃ*	Thunderbolt of Iron
RV10.180.2	*sṛkam*	**Perhaps a sharp blade of iron**

The weapons of the deities were invariably made of iron. This kind of imagination laid the foundation for the forging of Iron tools and weapons in the Rigvedic Period.

Iron Stones for Fort walls

Rigvedic People visualized that their deities reside in fortified forts and homes built with ironstones. The verse RV7.3.5 refers to glories of Agni's hundred fortresses of iron:

यथा वः सवाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः |

yathā vaḥ svāhāghnaye dāśema

parīḷābhirghṛtavadbhiśca havyaiḥ

तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भि**रायसीभिर्नि पाहि** || 7.3.5

tebhirno aghne amitairmahobhiḥ śataṃ

pūrbhirāyasībhirni pāhi

Iron forts are repeatedly mentioned in several verses in the early, middle and later Rigvedic books as follows:

Verse	Texts related to the forts/ homes	Text meaning related to the forts/ homes
RV 7.15.14	*naḥ āyasī anādhṛṣṭaḥ nṛ-pītaye pūḥ bhava šata-bhujiḥ*	Be a mighty iron fort to us, with hundred walls for man's defence.
RV7.95.1	*āyasī pūḥ*	Fort of Iron
RV2.20,8	*hatvī dasyūn pura āyasīrni tārīt*	Killed Dasyus and cast down their Iron forts
RV4.27.1	*šatam mā puraḥ āyasīḥ*	A hundred iron fortresses
RV1.58.8	*pūḥ-bhiḥ āyasībhiḥ*	Forts of Iron
RV9.80.2	*ayaḥ-hatam*	Iron-fashioned home
RV1.58.8	*pūrbhír āyasībhiḥ*	Forts of Iron
RV10.101.8	*kṛṇudhvam āyasīḥ adhṛṣṭāḥ*	Make iron forts

The verses mentioned above are significant TME, which establish that Rigvedic People discovered meteoric ironstones during the earliest period of Rigveda.

How the word "ayas" originated in Vedic Sanskrit is a subject of linguistic research. Rigvedic People found ayas as stones. Rigveda uses the word "*aśman*" for stone. Avestan Sacred Liturgy Text (Yasna chapter 22.2)[12] refers to the word "*ayanghaênaca*", which is translated[12] as "iron mortar". The cognate Iranian word for "*ayanghaênaca*" is "*aysan*", which means "heavenly stone". The word "*ayas*" is possibly derived from the Sanskrit word "*aśman*", and it refers to meteoric stones which had fallen from the sky. If linguistic experts endorse our view about the origin of the word "ayas" from "*aśman*", then the meaning of *ayas* as meteoric ironstones is self-evident.

Small Iron Weapons and Tools

Rigvedic People gradually became a user of iron. They learnt and developed their metalworking skills to make simple weapons and tools of small sizes made of iron for their day-to-day use.

The verse RV 6.75.15 refers to arrows that were tipped with iron (***ayaḥ mukham***):

आलाक्ता या रुरुशीष्ण्यथो यस्या **अयो मुखम** |
6.75.15

ālāktā yā ruruśīrṣṇyatho yasyā ayo mukham

The verse RV10.99.6 refers to a shaft whose sharp point was made of iron and used to strike down a boar:

अस्य तरितो नवोजसा वर्धानो **विपावराहमयोग्रया** हन || 10.99.6

asya trito nvojasā vṛdhāno vipāvarāhamayoaghrayā han

The verse RV8.29.3 refers to axe by the term ***vāśīm*** as follows:

वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ||
8.29.3

vāśīmeko bibharti hasta āyasīmantardeveṣu nidhruviḥ

The axes or swords called by the term ***vāśīḥ*** are also mentioned in many other verses such as RV1.37.2, RV1.88.3, RV5.53.4 and RV8.29.3. The RV 8.29.3 is a TME as it establishes that weapon or tool like an axe was made of iron in the Late Rigvedic Period.

The verses RV1.64.4 and RV8.20.11 refer to spear by the term ***ṛṣṭi*** , as follows:

अंसेष्वेषां नि मिम्रक्षुर **रष्टयः** साकं जज्ञिरे सवधया दिवो नरः || 1.64.4

aṃseṣveṣāṃ ni mimṛkṣur ṛṣṭayaḥ sākaṃ

jajñire svadhayā divo naraḥ

दविद्युतत्य **रष्टयः** || 8.20.11

davidyutaty ṛṣṭayaḥ

In the verses mentioned above, RV6.75.15 is the most significant TME in the earliest Book of Rigveda, and it shows that Rigvedic People had started using the iron to make arrows' tips in the Early Rigvedic Period. However, they could make weapons like swords, axes or spears only in the Late Rigvedic Period.

Domestic Iron Items

Rigvedic People started using iron to make small domestic items such as needle, knife, and sharp point for making holes.

The verse RV 6.53.5 indicates that Rigvedic People could make a sharp pointer for making holes in wooden or ceramic materials in the Early Rigvedic Period:

परि तर्न्धि पणीनामारया हृदया कवे |

pari tṛndhi paṇīnāmārayā hṛdayā kave

अथेमस्मभ्यं रन्धय || 6.53.5

athemasmabhyaṃ randhaya

The above RV 6.53.5 is a significant TME as it refers to possibly the first small object made of iron in the oldest book (i.e. earliest) of the Rigveda.

The verse RV2.32.4 refers to a never-breaking needle known by the term ***śūcī*** in the middle period of the RV:

सीव्यत्वपः सूच्याछिद्यमानया ददातु वीरं सतदायमुक्थ्यम || 2.32.4

sīvyatvapaḥ sūcyāchidyamānayā dadātu vīraṃ satadāyamukthyam

The above RV2.32.4 is a significant TME as it highlights the never–breaking quality of the needle. The text implies that Rigvedic People would have experienced brittleness and might have applied some heat treatment to the needle.

The verse RV1.166.10 refers to a knife, and the verse RV8.4.16 refers to a barber's blade using the term ***kṣurā*** as follows:

अंसेष्वेताः पविषु **कषुरा** अधि वयो न पक्षान वयनु शरियो धिरे || 1.166.10

aṃseṣvetāḥ paviṣu kṣurā adhi vayo na pakṣān vyanu śriyo dhire

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव **कषुरं** रास्व रायो विमोचन | 8.4.16

saṃ naḥ śiśīhi bhurijoriva kṣuraṃ rāsva rāyo vimocana

The verse RV7.83.1 refers to a broad blade with sharp edges by the term ***paraśu***, used for heavy cutting operations:

युवां नरा पश्यमानास आप्यं पराचा गव्यन्तः पर्थु**पर्शवो** ययुः | 7.83.1

yuvāṃ narā paśyamānāsa āpyaṃ prācā ghavyantaḥ pṛthuparśavo yayuḥ

The verse RV5.30.15 refers to a cauldron made of iron and used for the fire rituals:

*घर्मश्‌ चित तप्तः परव्रजे य आसीद **अयस्मयस** तं व आदाम विप्राः* || 5.30.15

gharmaś cit taptaḥ pravṛje ya āsīd ayasmayas taṃ v ādāma viprāḥ

The domestic items such as a knife, blade, needle, quick pointers and cauldron for fire rituals were made of iron as no other hard metal was available in the Rigvedic period.

Agricultural Iron Tools

Rigvedic People started using metallic agricultural tools such as ploughshare tips, sickles for crop cutting, and forest axes. The verse RV4.57.5 elevates the plough and its share to the high status by associating it to dual agriculture deities' *Śunā* and *Sīrā*:

शुनासीराव इमां वाचं जुषेथां यद दिवि चक्रथुः पयः |
śunāsīrāv imāṃ vācaṃ juṣethāṃ yad Divi cakrathuḥ payaḥ
तेनेमाम उप सिञ्चतम || 4.57.5
tenemām upa siñcatam

Plough tip named by the term ***phāla*** in the verse RV10.117.7 and by the term ***śunaṃ*** in the verse RV4.57.7 appear as follows:

कर्षन्नित **फाल** आशितं
कर्णोति यन्नध्वानमप वर्ङकतेचरित्रैः | 10.117.7
kṛṣannit phāla āśitaṃ kṛṇoti
yannadhvānamapa vṛṅktecaritraiḥ |

शुनम पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनम अस्मासु धत्तम || 4.57.7
śunaṃ parjanyo madhunā payobhiḥ
śunāsīrā śunam asmāsu dhattam

A sickle is referred to by the term ***dātra*** in the verse RV8.78.10 and by the term ***ṣṛṇī*** in the verse RV10.101.3, as follows:

तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते **दात्रं** चना ददे | 8.78.10
tavedindrāhamāśasā haste dātraṃ canā dade

गिरा च शरुष्टिः शभरा असन नो नेदीय इत **सर्ण्यः**पक्वमेयात || 10.101.3
ghirā ca śruṣṭiḥ śabharā asan no nedīya it sṛṇyaḥpakvameyāt

The term ***kuliśa*** refers to the axe, used for making chariots in verse RV 3.2.1 and warfare in verse RV 1.32.5, as follows:

दविता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथंन **कुलिशः** सं रण्वति || 3.2.1
*dvitā hotāraṃ manuṣaśca vāghato dhiyā rathaṃna **kuliśaḥ** saṃ ṛṇvati*

सकन्धांसीव
कुलिशेना विव्रक्णाहिः शयत उपप्रक पर्थिव्याः || 1.32.5,
*skandhāṃsīva **kuliśenā** vivṛkṇāhiḥ śayata upapṛk pṛthivyāḥ*

The term ***kriti*** refers to forest axe or chopper or cutter in the verse RV1.168.3 as follows:

ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु **खादिश्चक्रितश्च** सं दधे || 1.168.3

aiṣāmaṃseṣu rambhiṇīva rārabhe hasteṣu khādiścakṛtiśca saṃ dadhe

The above descriptions do not mention the material of the Agricultural tools. However, it is safe to say that sharp agricultural tools were made of iron, which was in everyday use to make similar other hard and sharp objects in the Late Rigvedic Period.

IRONWORKING

There is no direct textual evidence for iron metalworking practices in Rigveda. However, there are many references to skilled Metalworkers. The verses such as RV9.112.2 and RV10.72.2 refer to Metalworkers by the term "*karmāra*" who operated the furnaces for reaching the high temperature by blowing air in it (*dhamati*):

बरह्मणस पतिरेता सं **कर्मार** इवा**धमत** | 10.72.2

brahmaṇas patiretā saṃ karmāra ivādhamat

We infer that skilled Metalworkers (*karmāra*) heated iron pieces to the red hot condition in the furnace and hammered them into the shapes of agricultural tools and weapons of small sizes and simple shapes. In our view, *karmāra* were the early Metalworkers who fabricated objects of iron. Perhaps, *karmāra*, later on, became blacksmiths.

AN OVERALL PERSPECTIVE OF IRON METALLURGY

Rigvedic People discovered a new and hard metal called *ayas* in the early Rigvedic period. Rigvedic People had unique scientific insights and knew that the meteoric iron stones had fallen on the earth from the sky. The discovery of hard metal in a ready-to-use form was the earliest significant breakthrough in India's ancient metallurgy.

Rigvedic People had found some sites from where they could pick up iron meteorites debris for their use. The highly skilled Metalworkers (*karmāra*), based on their experience of the gold metallurgy, understood that they do not have the technique to melt meteoric ironstones or their pieces. Metalworkers had focussed their efforts on developing hot forging techniques and shaping the small meteoric iron pieces into small objects such as a needle, knife, sharp pointers for making holes, tips of arrows, and ploughs.

There is absolutely no evidence of iron produced from iron ore/minerals in the Rigveda,

The history of Iron Metallurgy of ancient India began with discovering meteoric ironstones in the early Rigvedic period. Metalworkers started mining meteoric ironstones pieces. They had acquired the skills to hot forge and shape them into small domestic and agriculture tools used in a limited range of applications. In sum, Iron metallurgy was in the "Native Stone Stage" in the Rigvedic period.

A synopsis of an overall perspective of the Iron Archaeometallurgy of India in the Rigvedic period is presented below:

Iron Origin	Iron Sources	Iron Production	Iron Working	Iron Objects
Shower of Iron meteorites on the earth from the sky	Mining from the Iron meteorites debris deposits No evidence of Iron ores	Meteoric Iron pieces could not be melted but were ready to be used for making iron objects	Furnaces for heating Hot Forging Sharpening Metalworkers (*karmāra*)	Tips of Arrows Spears Knives & Needles Sickles & Axes Tips of ploughs Sharp blades

CONCLUDING REMARKS

Rigveda provides firm textual evidence that gold was the first metal and iron was the second known antique metals in the early period of the Vedic Civilization. Rigvedic People considered these metals as gifts from their deities. The story of the adoption of gold and iron by the Rigvedic People in their daily life is a fascinating amalgam of beliefs in their deities and zest for their worldly life.

Gold was the first antique metal identified by the term *hiraṇya*, and it was considered a divine metal of beauty and wealth. The primary source of gold was from the alluvial sands mines of the River Indus. Rigvedic People also discovered gold in lode (primary) mode as ingrained in hard quartz rocks. Gold recovered from hard rocks was called *rukmā*, and it was a minor source of gold in the entire Rigvedic period. Most of the mined gold was in fine

fragments or dust form, and It was the need of the hour to consolidate fine gold into a lumpy form. Metalworkers developed furnaces that could reach the melting temperature of gold by using air blowing techniques in the early Rigvedic period. Fine gold was melted and cast into a lumpy form called *hiraṇyapinda*. Metalworkers hammered the gold lumps into a variety of simple ornaments and *niṣkas*. The use of gold in the form of *niṣka* was perhaps the earliest step that laid the foundation for gold as coinage in India's later history.

Iron was the second antique metal discovered in an early period of the Rigveda and identified by the term *ayas*. We have presented our arguments with new internal textual evidence, confirming that *aya*s was naturally occurring iron sourced from meteoric iron debris fallen from the sky. Meteoric iron was harder and stronger than gold. It was not possible to melt meteoric iron like gold. Metalworkers developed the skills and techniques to hot forge the iron pieces to make sharp and hard small-sized objects of daily use such as knives, needles, axes, tips of arrows, spears and ploughs, and sharp pointers making holes, sharp blades and sickles. It is unique to ancient India's metal history that naturally occurring iron preceded other antique metals such as silver, lead, copper, tin, and bronze.

The textual "metal evidence" of gold and iron generally supports the internal chronology of the Rigveda. However, Book 3, which shows no iron evidence, might be older in chronological order than Book 6 in the early Rigvedic period.

The textual "metal evidence" of gold supports the theory of Rigvedic people's westward migration in pursuit of gold to the Indus River banks in the late Rigvedic period.

Rigveda provides consistent internal textual evidence that establishes the emergence of baseline metallurgy of naturally occurring gold and meteoric iron. It is unique to the ancient Indian history of metallurgy that it started almost simultaneously with soft metal such as gold and hard metal such as iron. The baseline metallurgy of the Rigveda laid the sound foundation for constructing the progress of ancient Indian metallurgy in the Late Vedic Period and the Vālmīki Rāmāyaṇa.

REFERENCES

1. Witzel Michael, Central Asian Roots and Acculturation in South Asia: Linguistic and Archaeological Evidence from Western Central Asia, the Hindukush and 17 Northwestern South Asia for Early Indo-Aryan Language and Religion. In- Indus Civilization: Text and Context, edited by Toshiki Osada, Manohar Publications, New Delhi (2006), pp 64-65.
2. Rig-Veda (Sanskrit) - The complete Rig Veda in Sanskrit, in Unicode Devanagari script and standard Romanization. Online at: https://www.sacred-texts.com/hin/index.htm
3. Griffith Ralph T.H., A complete English translation of the Rig Veda. (1896), https://www.sacred-texts.com/hin/index.htm
4. Talageri Shrikant, The Rigveda: A Historical Analysis, Aditya Prakashan (New Delhi), (2000).
5. Talageri Shrikant, Rigveda and the Avesta: The Final Evidence (2008)
6. MacDonnell Arthur Anthony, A History of Sanskrit Literature, D. Appleton and Company, New York, (1900), p 152
7. Biswas Arun Kumar, Minerals and Metals in Ancient India. Vol. 1 and Vol. 2, DK. Printworld (P) Ltd. New Delhi (1996).
8. Chakrabarti D.K., The Early Use of Iron in India. Oxford University Press. Delhi (1992)
9. MacDonnell Arthur Anthony and Keith Berriedale, Vedic Index of Terms and Subjects (1912) Volume 1-2, republished by Motilal Banarsidass Publisher, Delhi (1995)
10. Neogi Panchana, Iron in Ancient India, Indian Association of Cultivation of Sciences (Bulletin 12), Calcutta (1914)
11. Ṛgveda-Samhitā Srimat-sāyanāchārya virachita-bhāṣya-sametā, Vaidika Samśodhana Mandala, Pune-9 (2nd ed) (1972
12. Avesta Text at http://avesta.org/yasna/yasna.htm.

Principal Consultant,
DASM Metallurgical Consultancy,
Brampton, Canada
Advisor, Pradeep Metals Limited, Rabale,
Mumbai, India

3

नवीन शोधपरक विषयों का बीजवपन करती पुस्तक 'मध्यकालीन कविता का पुनर्पाठ'

डॉ. करुणा शर्मा

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।' 'मइया मोरी मैं

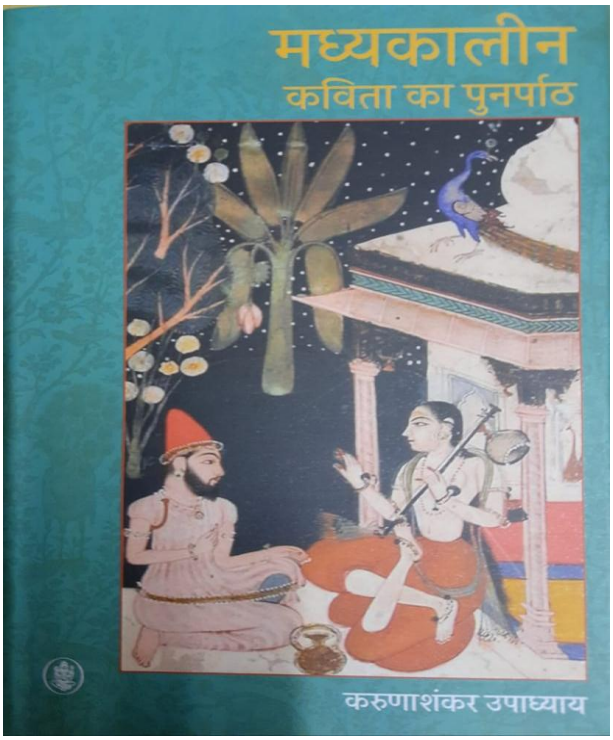

नहीं माखन खायो' 'सियाराममय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी।' 'दृग उरझत टूटत कुटुम्ब, जुरत चतुर चित प्रीति। परति गांठ दुरजन हियै दई नई यह रीति।।' जैसी अनेकानेक भावपूर्ण, कलापूर्ण एवं कालजयी कविताओं के कारण 'स्वर्ण युग' से अभिहित की गई मध्यकालीन कविता! कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, बिहारी, भूषण आदि अनेक कवियों की रचनाओं के कारण देशी और विदेशी आलोचकों द्वारा सराही गई मध्यकालीन कविता! किंतु आधुनिक समय में ऐसे क्या कारण रहे कि यह कविता उपेक्षा का शिकार होने लगी? लगता है कि आधुनिक आलोचकों की कुटिल नीति के कारण मध्यकालीन कविता मात्र भक्तिपरक साहित्य बनकर रह गई। कुछ आलोचकों की नीति तो यह भी रही कि इसे जड़ से उखाड़ फेंक दिया जाए और कभी इसकी चर्चा ही न हो। उसकी अच्छाइयों और गुणों में भी इन्हें बुराइयाँ और अवगुण दिखाई देने लगे। कहते हैं न, अगर एक झूठ बार-बार बोला जाए तो वह ही सच लगने लगता है, इस सोच के कारण अन्य लोगों ने इसकी वास्तविकता को जानने का प्रयास न करके उनकी मान्यता को ही अपनी दृष्टि बना लिया। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों और विशेषज्ञों का ध्यान भी इस कविता में कम हो गया, उसके अध्ययन और अध्यापन के प्रति विमुखता देखी जाने लगी। लेकिन इस संदर्भ में डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय ने विमर्श करते हुए लिखा है कि "वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जब साहित्य और आलोचना दोनों ही समसामयिक विषयों और विमर्श को विशेष महत्व दे रहे हैं तब यह और जरूरी हो जाता है कि हम समूचे मध्यकालीन साहित्य पर नए सिरे से विचार करें।"[1] इस विचार तथा "यदि हम समकालीन संदर्भों एवं सरोकारों के अनुरूप उसका नया पाठ तैयार करते हैं तो इससे संपूर्ण मनुष्यता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।"[2] इस उद्देश्य के साथ लेखक करुणाशंकर उपाध्याय की दृष्टि इस ओर गई और उन्होंने कोरोनाकाल का सकारात्मक उपयोग करते हुए 'मध्यकालीन कविता का पुनर्पाठ' पुस्तक तैयार की जो आधुनिक आलोचकों

की उपरोक्त दृष्टि पर कठोर प्रहार करती है और इस काल की कविता में पाए जाने वाले "मानवीय मूल्य, लोकमंगल का भाव, चराचर के प्रति अभेद दृष्टि, सहज एवं निर्लिप्त जीवन की प्रतिष्ठा, सामान्य एवं अलौकिक चरित्र-सृष्टि, काव्यरूपों का वैविध्य तथा भाषिक एवं शिल्पगत अनुप्रयोग जैसे तत्वों को तर्क एवं तथ्यों के आधार पर परखने के बाद नई आलोचना-पद्धति से पुनर्पाठ के लिए प्रेरित करती है।"[3] लेखक इस पुस्तक द्वारा मध्यकालीन कविता का नए तरीके से चिंतन-मनन करने के लिए प्रेरित करने के साथ ही उसमें समझ में न आने वाली गुत्थियों को सुलझाने का मार्ग भी प्रशस्त करता है। 25 अध्यायों तथा 264 पृष्ठों वाली राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित यह पुस्तक लेखक के गहन अध्ययन, चिंतन, मनन, शोध एवं अनथक परिश्रम का परिणाम है। मध्यकालीन कविता के पुनर्पाठ के साथ ही लेखक ने इसमें प्रत्येक पाठ के अंत में अनेक नवीन शोधों की राह भी पूर्ण तार्किकता के साथ सुझाई है जिसे पढ़कर पाठक विस्मित हुए बिना नहीं रहता। इस प्रकार लेखक की विद्वत्ता, अध्ययनवृत्ति, शोधवृत्ति, आलोचनात्मक-क्षमता का प्रमाण बन जाती है 'मध्यकालीन कविता का पुनर्पाठ'! लेखक का यह प्रयास अत्यंत प्रशंसनीय और सराहनीय है।

किसी भी कविता या साहित्य का पुनर्पाठ से तात्पर्य होता है-उस साहित्य पर आज के संदर्भ में नए सिरे से दृष्टिपात करना। इस संदर्भ में लेखक चाहता है कि अपने समय के अत्यन्त महत्वपूर्ण आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपूर्ण मध्यकालीन साहित्य पर तत्कालीन परिस्थितियों में जो प्रामाणिक पाठ तैयार किया गया था, उस पर भी अब पाठकेंद्रित आलोचना पद्धतियों के आलोक में नए तरीके से विचार किया जाना चाहिए। लेखक के अनुसार, "मध्यकालीन कविता अपने समय और समाज को दिशा देने के साथ-साथ अपने समसामयिक बोध, जीवन बोध, समाजबोध तथा विश्व बोध के कारण भी पुनर्पाठ की माँग करती है।"[4] मध्यकालीन कविता का यदि समकालीन संदर्भों एवं सरोकारों के अनुरूप पुनर्पाठ किया जाता है, वह भी उत्तर आधुनिकता के मानदंडों-कालातीत दृष्टिकोण और कालिक व्यतिक्रम की प्रतिष्ठा; सांस्थानिक शैथिल्य तथा सर्वसत्तावाद अथवा एकाधिकारवाद के स्थान पर बहुलता को प्रोत्साहन; उत्पादन के स्थान पर लीलाभाव का आह्लादक समारोह; दृश्यपरकता के स्थान पर श्रवणशीलता पर जोर-की कसौटी पर कसकर तो उसके द्वारा संपूर्ण मनुष्यता का कल्याण हो सकता है। इसी कसौटी पर कसकर यह सिद्ध किया जा सकता है कि आज से पाँच-छह शतक पूर्व लिखी इस कविता में वे सब विषेशताएँ पर्याप्त सीमा तक विद्यमान हैं जो हमें उत्तर आधुनिक साहित्य में देखने को मिलती हैं और आज की परिस्थितियों में इस कविता की प्रासंगिकता को भी सिद्ध करती हैं। लेखक ने प्रामाणिकता के आधार पर इसे सिद्ध करने को प्रयास किया है, "कबीर का प्रभाव डॉ. भीमराव अंबेडकर पर पड़ा तो गोस्वामी तुलसीदास ने महात्मा गांधी समेत तमाम आधुनिक नेताओं को प्रेरित-प्रभावित किया है।"[5] लेखक की प्रबल आकांक्षा है कि मानवीय समता और विश्व बंधुत्व की भावना की प्रतिष्ठापना करने वाले संपूर्ण भक्तिकाव्य का उत्तर आधुनिक समीक्षात्मक प्रतिमानों के आधार पर खुला विमर्श किया जाना चाहिए।

लेखक करुणाशंकर उपाध्याय उत्तर आधुनिक समीक्षात्मक पद्धति की सकारात्मकता से अत्यंत प्रभावित हैं क्योंकि उसके माध्यम से ही भक्तिकालीन काव्य के अन्तर्निहित अर्थ की सुनी-अनसुनी अनुगूँजों को सुना जा सकता है। हिंदी साहित्य के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनात्मक आंदोलन तथा श्रेष्ठता को लक्षित करने के लिए 'स्वर्ण युग' के नाम से अपनी पहचान कराने वाली मध्यकालीन कविता गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट और विपुल है तथा दलितों-पीड़ितों, उपेक्षितों के प्रति संपूर्णतया संवेदनशील है। लेखक ने 'वैश्वीकरण के दौर में संत नामदेव के काव्य की प्रासंगिकता' अध्याय में सिद्ध कर बता दिया है कि "भक्तिकाव्य शास्त्रीय रूढ़ियों,

सामाजिक वर्जनाओं, धार्मिक संकीर्णताओं के विरुद्ध लोकचेतना के स्वाभाविक उन्मेष का प्रतिफलन है।"[6]

आज के बहुत से कवि इस बात का श्रेय लेते हैं कि स्वानुभूत सत्य के रचनाकार वे ही हैं, स्त्रियों, पतितों, दलितों, पीड़ितों, शोषितों के पैरोकार भी वे ही हैं, इसका कारण उनका अज्ञान ही है। यदि उन्होंने मध्यकालीन कविता को विस्तृत वैचारिक दृष्टि से समझा होता तो यह बात उनके मानस में उपजती ही नहीं। मध्यकाल के नामदेव और कबीर स्वानुभूत सत्य का उद्घाटन काव्य-प्रतिमान के रूप में पहले ही कर चुके हैं। वे ही दलितों, शोषितों के मसीहा भी सिद्ध किए जा चुके हैं। कबीर 'सहज योग' की प्रतिष्ठा कर योग को जनसुलभ बहुत पहले ही बना चुके हैं। कबीर जैसे कवियों और योगियों की पद्धति ही आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सार्थकता प्राप्त कर रही है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "कबीर के साहित्य में जो महान प्रकाशपुंज है, वह बौद्धिक आलोचना का विशय नहीं, म्यूजियम की चीज नहीं बल्कि जीवित प्राणवान वस्तु है।"[7] और यह है कबीर का सतगुरु जो उसे ईशेवरोन्मुख बनाता है तथा जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति दिलवाता है। अतः कबीर की गुरुसंबंधी अवधारणा का बिना किसी पूर्वाग्रह के तथ्यपरक विवेचन करना वर्तमान समय की माँग है। लेखक तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कबीर संबंधी मूल्यांकन के पुनर्पाठ का भी आग्रह करता है।

जायसी, कुतुबन, मंझन जैसे सूफी कवियों ने अपनी कविताओं में प्रेम को जीवन का लक्ष्य और चरम पुरुषार्थ माना है। प्रेम समूची मानवता के लिए अनुपम निधि है और वर्तमान परिस्थितियों में उसकी सर्वाधिक आवश्यकता है, इसलिए लेखक की चाहना है कि सूफी साहित्य का अवलोकन खुले मन से किया जाए और उसमें निहित संदेशों और संवेदनाओं का अभिप्राय ग्रहण किया जाए। मानवीय वियोग और प्रेम-पीर के भुक्तभोगी जायसी ने जिस तरह विरह का वर्णन किया, उसके कारण उनका साहित्य संपूर्ण विश्व के साहित्य में श्रेष्ठतम स्थान का अधिकारी बन गया है।

'पुष्टिमार्ग और सूरदास' में लेखक पहले पुष्टिमार्ग की विषिष्टताओं को वर्णित करता है और बाद में बताता है कि 'पुष्टिमार्ग के जहाज' के नाम से अपनी पहचान बनाने वाले सूरदास पुष्टिमार्ग में भलीभाँति दीक्षित भी थे और उन्होंने जाने-अनजाने उसके सिद्धांतों का निर्वाह और निरूपण भी किया था। लेकिन सूरदास जैसे अत्यंत प्रतिभासंपन्न कवि-व्यक्तित्व इसी दायरे में ही सीमित होकर नहीं रहे क्योंकि उनका जन्म किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य के लिए हुआ था। उन्होंने पुष्टिमार्ग की सीमा से परे जाकर श्री कृष्ण की लीलाओं के माध्यम से अपने समय के समाज को जीवनशक्ति और आनंद-सामग्री प्रदान की तथा मध्यकालीन सामंती-जकड़न के युग में स्वच्छंद एवं एकांतिक प्रेम का निरूपण कर अपने ढंग से सामाजिक अर्गलाओं पर प्रहार किया। इस प्रकार सूर साहित्य युग-युगांतर की मनुष्यता को रसमग्न तथा प्रभावित करने की क्षमता रखता है। वर्तमान संदर्भ में सूर साहित्य किस प्रकार उपयोगी हो सकता है, इस विषय में लेखक का कहना है, 'जब-जब मनुष्यता, बौद्धिकता और भावलोक के मध्य असंतुलन का अनुभव करे तब-तब सूर साहित्य उसका दिशा-निर्देशक हो सकता है। इस दृष्टि से भी उसकी महत्ता चिरकाल तक अक्षुण्ण बनी रहेगी।'

मध्यकालीन कविता में विश्ववंदनीय महाकवि तुलसी लेखक करुणाशंकर उपाध्याय के प्रिय कवि के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, इसका प्रमाण है कि लेखक ने तुलसी और उनके साहित्य को केंद्र में रखकर 'रामायण और रामचरितमानस में प्रतिष्ठित मूल्यों की सार्वभौमिकता'; 'रामचरितमानसः आदर्श सामाजिक व्यवस्था का महाकव्य'; 'सामाजिक प्रतिबद्धता का लोकवृत्त'; 'हिंदी के पहले नारीवादी कवि हैं तुलसी'; 'जिसमें सब रम जाएँ, वही राम हैं'; 'रामलीला की परंपरा और तुलसीदास'; 'तुलसीदास और ताजमहल'; 'तुलसी की भाषा'; तथा 'आचार्य कवि गोस्वामी

तुलसीदास'; जैसे नौ अध्याय लिखे हैं। इस प्रकार पुस्तक के एक तिहाई भाग से भी अधिक में तुलसी समाहित हैं, इसके परिणामस्वरूप कई बातों की पुनरावृत्ति भी हो गई है।

आज सतत् मूल्यहीन होते जा रहे समाज को मूल्यों की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर सकती हैं वाल्मीकि कृत रामायण और तुलसीदास कृत रामचरितमानस। 'मूल्य' क्या हैं, इनकी क्या उपयोगिता है तथा रामायण और रामचरितमानस में इनकी प्रतिष्ठापना किस प्रकार की गई है तथा आधुनिक संदर्भ में ये मूल्य कितने प्रासंगिक हैं, इसकी जानकारी प्राप्त होती है हमें 'रामायण और रामचरितमानस में प्रतिष्ठित मूल्यों की सार्वभौमिकता' नामक अध्याय में। वर्तमान में जिस तरह अनैतिकता बढ़ रही है, ऐसे में नीतिवान लोगों के मनोबल को बढ़ाने के लिए इन दोनों पुस्तकों से प्राप्त होने वाले संदेश, 'असत्य, अन्याय, अधर्म और मूल्यहीनता कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों परंतु उन्हें सत्य, न्याय, धर्म और मूल्य के समक्ष हारना ही पड़ता है।' के प्रचार-प्रसार की बहुत आवश्यकता है।

रामराज्य की कल्पना गांधी जी ने रामचरितमानस को पढ़कर ही की थी। सत्ता सुख का त्याग जिस तरह राम और भरत दोनों ही अपने-अपने स्तर पर करते हैं, वह त्याग और निष्काम भाव वर्तमान वैश्वीकरण और बाजारवाद की गलाकाट स्पर्धा के बीच समूची मनुष्यता के लिए मार्गदर्शक हो सकता है। तुलसी की सामाजिक प्रतिबद्धता समूची मनुष्यता के प्रति है। यहीं लेखक शोधार्थियों के लिए विषय प्रस्तावित कर देता है, 'इनका संपूर्ण साहित्य तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक स्थितियों की सापेक्षता में समाजशास्त्रीय-विष्लेशण की माँग करता है। ऐसा करके हम उनके साहित्य-सागर से अनेक रत्न खोजकर निकाल सकते हैं। उसे वर्तमान संदर्भों में उपयोगी सिद्ध कर सकते हैं।'

डॉ. उपाध्याय लिखते हैं कि "स्त्री विमर्श उत्तर-आधुनिक दौर का एक बहुआयामी, बहुस्तरीय एवं जटिल प्रत्यय है जिसके भिन्न संदर्भों में परस्पर भिन्न व्याख्याएँ संभव हैं। लेकिन लेखक की दृष्टि में महाकवि तुलसीदास स्त्रीविमर्श के पहले कवि हैं। उन्होंने अपनी पत्नी रत्नावली को अपनी सारी उपलब्धियों का श्रेय दिया है।"[8] तुलसी के विषय में सामान्य धारणा उनके नारी निंदक रूप की है। इस संबंध में उनके नारीवादी रूप को लेकर लेखक की तार्किक दृष्टि 'हिंदी के पहले नारीवादी कवि हैं तुलसी' अध्याय में देखी जा सकती है। इस दृष्टि से उनके सारे नारी पात्र संदर्भ-सापेक्ष पुनर्पाठ की माँग करते हैं। तुलसी के राम के स्वरूप की व्याप्ति और रामलीला के वर्तमान स्वरूप के उद्घाटक और पुरस्कर्ता 'तुलसी ने अपने रामचरितमानस और रामलीला के माध्यम से समूचे भारतीय मानस में रामकथा और रामभक्ति को सदा-सर्वदा के लिए प्रतिष्ठित कर दिया है।' 'तुलसीदास और ताजमहल' शीर्षक देखकर चैंकना स्वाभाविक है। ताजमहल तो भारतीय एवं पाश्चात्य वस्तु-शैली का अनुपम उदाहरण है जिसका निर्माण तुलसी के बहुत समय बाद हुआ था तो कैसे तुलसी का वास्तुशास्त्र ताजमहल से श्रेष्ठ हो गया तथा क्या इस विषय को लेकर भी शोधार्थी शोध कर सकते हैं, जानने के लिए इस अध्याय का गंभीरता से अध्ययन करना होगा।

तुलसीदास ने सर्वप्रथम लोकरुचि को परखा और लोकभाषा के माध्यम से जन साधारण में अपने मनोभावों को जिस तरह संप्रेषित किया, वह भी मध्यकालीन कविता को तुलसी की अनुपम देन कहा जा सकता है। तुलसी के साहित्य में सूक्तियाँ बहुतायत में पढ़ने को मिलती हैं। यदि उन्हें ही संकलित किया जाए और प्रकाशित करवाया जाए, तो उस पर भी एक स्तरीय शोध हो सकता है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और प्राचीन हिंदी की काव्य परंपरा और शास्त्रीय चिंतन का ज्ञान रखने वाले तुलसी आचार्य के रूप में भी विद्वज्जनों में स्वीकार्य हैं। उन्होंने 'गिरा अरथ जल, बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।' कहकर वाणी और अर्थ की अभेदता स्थापित करने का प्रयास

किया। आचार्य के रूप में तुलसी की क्या भूमिका रही, इस पर एक ही स्थल पर संक्षिप्त किंतु पूरी जानकारी कोई पाठक प्राप्त करना चाहता है, तो उसे 'आचार्य कवि गोस्वामी तुलसीदास' अध्याय से प्राप्त हो जाएगी।

महाकवि तुलसी का विस्तृत विवेचन करने के पश्चात लेखक 'वैश्विक संदर्भ में गुरु जाम्भो जी की वाणी की प्रासंगिकता' में संत जाम्भो जी पर खुले विमर्श की माँग करता है क्योंकि उनके साहित्य में 'अर्थ की ऐसी अनेक सुनी-अनसुनी अनुगूँजें हैं जिन्हें सुनने-सुनाने का कार्य उत्तर-आधुनिक समीक्षा पद्धति बखूबी कर सकती है।' जाम्भो जी का नारीविषयक चिंतन और उनकी पर्यावरण के प्रति संबद्धता आज बहुत प्रासंगिक है जिन पर सतत विचार किया जाना चाहिए।

'वर्तमान परिदृश्य में संत वील्हो जी के काव्य की प्रासंगिकता' अध्याय में संत जाम्भो जी के परम शिष्य संत वील्हो जी के साहित्य के बारे में जाना जा सकता है। 'भक्तिकालीन कवियों का काव्य-चिंतन' तथा 'रीतिकालीन कवियों का काव्य-चिंतन' में कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, नंददास, कृपाराम, आचार्य केशवदास, आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी, कवितोश, कवि बेनी, महाराज जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण, कुलपति मिश्र, सुखदेव मिश्र, आचार्य देव, याकूब खाँ, आचार्य श्रीपति मिश्र, सोमनाथ, आचार्य भिखारीदास, पद्माकर, बिहारी, सेनापति, घनानंद की काव्यदृष्टि से संबंद्धित जानकारी संक्षेप में पाई जा सकती है।

'मनीषी परंपरा के साहित्यिक आचार्य नित्यानंद शास्त्री' में लेखक लिखता है, "भारतीय परंपरा में आचार्य वही होता है जो 'प्रस्थान' प्रवर्तक होता है, जिसकी अपने क्षेत्र में युगांतरकारी भूमिका होती है। आचार्य नित्यानंद शास्त्री ऐसे ही आचार्य हैं जिन्होंने अपनी काव्य-रचना में प्रासंगिक रूप में काव्य-चिंतनात्मकता को भी व्यंजित किया है।"[9] संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजी के अधिकारी विद्वान, हिंदी और संस्कृत जैसी दो बड़ी भाषाओं में महाकाव्य लिखने का अप्रतिम कार्य करने वाले षास्त्री जी की रचनाओं और उनकी विषिष्टताओं के बारे में जानने के लिए इस अध्याय का अध्ययन आवश्यक है। 'मराठी रामकाव्य का स्वरूप' में मराठी रामकाव्यों और उनके कवियों में संत एकनाथ कृत 'भावार्थ रामायण', कृष्णदास मुद्गल कृत 'संपूर्ण रामायण', चिंतामणि विनायक कृत 'श्रीराम चरित्र' तथा अंत में डॉ. रत्नाकर नराले की हिंदी-संस्कृत-अंग्रेजी में त्रिभाषिक 'संगीत श्री रामायण' पर प्रकाश डाला है। इस अध्याय के माध्यम से लेखक हिंदी जगत को मराठी रामकाव्यों के अद्भुत प्रदेय से परिचित करवाना चाहता है। अध्याय का अंत फिर शोध हेतु विषयों का बीजवपन करता हुआ, 'हम हिंदी रामकाव्य और मराठी रामकाव्य के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भी अपने महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं। हम इसके पुनर्पाठ द्वारा इसकी रचनात्मक शक्ति एवं संभावनाओं के बीच एक संबंध स्थापित कर सकते हैं।'

'अयोध्या कालयात्री है' नामक अध्याय यद्यपि मध्यकालीन कविता से संबद्ध नहीं है तथापि अयोध्या है तो राम से संबद्ध, उनकी जन्मभूमि, उनकी मातृभूमि है, यह सोचकर ही इस अध्याय का अध्ययन किया तो पाया कि लेखक ने अयोध्या पर बहुत गहनता से शोध करके इस अध्याय को रचा है। इसके माध्यम से लेखक पाठकों को सुंदर संदेश देता है, 'अयोध्या ने सिद्ध किया है कि धर्म की लड़ाइयाँ पाँच सौ वर्षों के बाद भी जीती जा सकती हैं। हमें बस अपने मार्ग पर चलते रहना है। आज के समय में क्षणिक पराजय के बाद ही लोग हतोत्साहित हो कर विलाप करने लगते हैं कि 'सब समाप्त हो गया, हमें कोई नहीं बचा सकता...' अब ऐसे में अयोध्या का मंदिर ऊर्जा देने का काम करेगा कि हम पराजित नहीं

हो सकते।'

संपूर्ण पुस्तक का आद्यंत अध्ययन करने के बाद कहा जा सकता है कि डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय ने जिस उद्देश्य से 'मध्यकालीन कविता का पुनर्पाठ' किया है, वह अवश्य पूरा होगा। मध्यकालीन कवियों और उनकी कविता के गौरव को लेखक ने जिस तरह से उद्घाटित किया है, वह कल्पनाजन्य नहीं है, पूरी तार्किकता के साथ स्थान-स्थान पर उसे प्रमाणित भी किया है। शोध हेतु अनेकानेक विषय प्रस्तावित हैं जिन पर मध्यकालीन कविता को परखा जा सकता है। विद्यार्थियों, प्राध्यापकों और शोधनिर्देशकों को इस पुस्तक का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में यह पुस्तक रखी जानी चाहिए ताकि विद्यार्थी मध्यकालीन कविता के गौरव से परिचित हो उसका अध्ययन करने के लिए प्रेरित हो सकें और शोधार्थी पुस्तक में प्रस्तावित विषयों में से किसी का चयन कर शोध के लिए आगे बढ़ सकें। आशा और विश्वास है कि इस पुस्तक की पहचान हिंदी साहित्य और आलोचना की अमूल्य निधि के रूप में होगी।

संदर्भ सूची –

1.मध्यकालीन कविता का पुनर्पाठ, करुणाशंकर उपाध्याय, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृ. 5

2.वही, पृ. 7

3.वही, पृ. 12

4.वही, पृ. 5

5.वही, पृ. 12

6.वही, पृ. 51

7.कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2019, पृ. 67

8.मध्यकालीन कविता का पुनर्पाठ, करुणाशंकर उपाध्याय, पृ. 14

9. वही, पृ. 241

भूतपूर्व प्राध्यापक,
दिल्ली सरकार

4

आधुनिक कवियों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

प्रदीप कुमार

19वीं सदी विश्व में मानवतावादी समाज के लिए संघर्ष से युक्त थी। इस समय अंग्रेजों का शासन विश्व के अधिकतर देशों में था। अंग्रेज जनमानस को तरह-तरह से प्रताड़ित कर रहे थे। जिससे अत्यधिक देशों के लोगों के हृदय में आक्रोश व्याप्त हो गया था। विश्व में क्रान्ति का आगाज होते ही भारत में भी असंतोष व्याप्त हुआ, जिससे आम जनमानस से लेकर क्रान्तिकारी, लेखक, नेता सभी स्वाधीनता आन्दोलन में कूद पड़े। भारतीय क्रांति को देखकर ब्रिटिश हुकूमत ने दमनात्मक रवैया अपनाया और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर आघात पहुंचाया जाने लगा। जिससे जन आक्रोश के साथ लेखकों की कलम की धार तेज हो गई तथा लेखकों ने लेखकीय दायित्व को समझते हुए अंग्रेजो की वास्तविकताओं को भारतीयों के सामने लाया जाने लगा। कवियों ने अपनी कविताओं से जनमानस के हृदय में प्राण फूंक दिए तथा एक-एक करके कई कवियों पर अंग्रेजी शासन ने पाबन्दी लगा दी। कुछ को जेल में डाल दिया। इसके बावजूद कवि अपनी रचनाओं द्वारा जेल से ही भारतीयों का आवाह्न करते रहे।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी में राष्ट्रीय काव्य या राष्ट्रीय साहित्य जैसे शब्दों का प्रयोग नही मिलता है। राष्ट्रीयता का स्वरूप आधुनिक काल से पूर्व चन्दबरदायी और भूषण के साहित्य में प्राप्त होता है, किन्तु उसमें आधुनिककाल जैसी प्रखरता नही है। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा को सशक्त बनाने में बहुत से श्रेष्ठ कवियों का योगदान है, जिसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान इत्यादि के नाम प्रमुख हैं।

राष्ट्रीय काव्यधारा का उदय आधुनिक काल में भारतेन्दु युग से होता है जिसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वयं राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने की बात करते हैं। वे निजभाषा को प्रधान घोषित करते है, क्योंकि निज भाषा से ही मानव में चेतना का समावेश होता है और चेतना के जाग्रत होने पर वह राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत हो जाता है। राष्ट्र निर्माण में निज भाषा के महत्व को दर्शाते हुए भारतेन्दु जी कहते है-

"निजभाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल,
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।
भारत में सब भिन्न अति, ताहीं सो उत्पात,
विविध देश मतहू विविध, भाषा विविध लखात।"[1]

राष्ट्रीय कवि के रूप में विख्यात मैथलीशरण गुप्त जी अपनी राष्ट्रीय रचनाओं से भारतीय पटल पर अप्रितम छाप छोड़ते है। भारत -भारती लोगों के हृदय में इस तरह समावेशित हो जाती है कि लोग रामायण, गीता के समान भारत-भारती के एक एक पद का वाचन करते हैं और लोगो को राष्ट्र के प्रति स्वदायित्व को जगाते है, भारत भारती की पंक्तियों को सुनाते है। गुप्त जी ने इसमें अतीत, वर्तमान, भविष्य का ऐसा बिम्ब प्रस्तुत किया है कि जिसे पढ़ते ही मुर्दे व्यक्ति में चेतना का संचार हो जाए। इसमें अतीत काल के इतिहास को पढ़ने हेतु नई पीढ़ी को प्रेरित किया गया है। वर्तमान को साधते हुए भविष्य का संधानकर मार्ग प्रशस्त किया गया है। आर्यभूमि की प्रशंसा में कवि कहता है-

"भूलोक का गौरव / प्रकृति का पुण्यलीला स्थल कहाँ,
फैला मनोहर गिरि हिमालय / और गंगा जल जहाँ

सम्पूर्ण देशों से अधिक / किस देश का उत्कर्ष है,
उसका कि जो ऋषि भूमि है / वह कौन भारतवर्ष है।''[2]

'किसान' कविता में गुप्त जी राष्ट्रीय चेतना का संचार करते है। किसान स्वाभिमानी स्वभाव का होता है। वह कर्जविहीन रहकर जमीन की रातदिन सेवा करता है तथा जमीन के सीने को चीरकर उसे हरा भरा बनाता है तथा अन्न को उत्पन्न करके स्वयं के साथ देश के लोगों का पालन पोषण करता है। गुप्त जी एक आदर्श किसान का चित्र खींचते हुए कहते हैं-

''टिगरिस तट पर युद्ध स्थल में / वीरोचित गति को पाकर,
अन्तिम वाणी से पल-पल में / निज शोभित से लिखवाकर
हे भारत मरने से पहले / यह तेरा किसान सैनिक,
तुझे दिए जाता है पहले / आत्मचरित्र ही चिर दैनिक''[3]

सियाराम शरण गुप्त का साहित्य में अपना स्थान है। ये गांधी के पदचिन्हों में चलने वाले साहित्यकार थे। जीवन की लम्बी यात्रा में गुप्त जी अधिकतर अस्वस्थ रहे, किन्तु गुप्त जी ने साहित्य कर्म को कभी छोड़ा नही, बल्कि उसको साधना मानकर निरन्तर साधनारत रहे। सियारामशरण गुप्त जी गांधीवाद के समर्थक थे, इसलिए गांधी जी के आदर्शो के प्रति पूर्ण श्रद्धा होने से इनके जीवन में नया मोड़ आ गया जिसका निर्वाह इन्होनें जीवन पर्यन्त किया। सम्पूर्ण विश्व युद्ध के भयंकर सिंह नाद से त्रस्त था इसलिए आदमी उस समय शान्ति की छाया को भी प्राप्त नही पा रहा था, जो मानवहित के लिए जरूरी है। हिंसा कितनी ही बलवती क्यों न हो, किन्तु उसे अन्त में शान्ति का मार्ग प्रशस्त करना होगा। इसी शान्ति के पक्षधर गुप्त जी सम्पूर्ण विश्व को अपना कुटुम्ब मानते हैं। वे विविध धर्मो या देश की सीमाओं को स्वीकार नही करते थे। उनके हृदय में सम्पूर्ण विश्व के जीवों के प्रति करूणा का भाव था, विश्व कल्याण की भावना से रत गुप्त जी जमीं पर सदैव रहे। वे कहते हैं-

"जय-जय भारतवर्ष हमारे / जय-जय हिन्द हमारे हिन्द।
विश्व सरोज के सौरभ मय / प्रिय अरविन्द, हमारे हिन्द।
सबके लिए अभय है जग में / जन-जन में तेरा उत्थान।
बैर किसी के लिए नही है /प्री ति सभी के लिए समान।।''[4]

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी राष्ट्रीय काव्य धारा के मुख्य कवि हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी त्रिपाठी जी गांधीवादी दर्शन के अग्रदूत तथा भारतीय परम्पराओं के पोषक कवि हैं। गांधी जी से प्रभावित होकर त्रिपाठी जी ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया तथा दो वर्ष तक जेल में रहे किन्तु देश प्रेम का भाव नही छोड़ा, बल्कि अंग्रेजो के इस कृत्य के बाद उनमें राष्ट्रीय चेतना का और अधिक संचार हुआ। उनकी प्रमुख रचनाओं में 'पथिक' श्रेष्ठ रचना है। पथिक के सामने उत्पन्न होने वाली समस्याएँ उनकी स्वयं की है, जो उन्होनें पथिक के माध्यम से स्वयं की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। पथिक सभी से सहयोग प्राप्त कर अपना मार्ग प्रशस्त करता है। वह गरीबों, मजदूरों, किसानों, क्रान्तिकारियों, देशभक्तों का मित्र है। पथिक दूसरे के अधीन होने को गुलामी स्वीकार करते है। रामनरेश त्रिपाठी जी कहते हैं-

''अपना शासन आप करो / तुम यही शान्ति है, सुख है
पराधीनता से बढ़ जग में / नही दूसरा दुख है।''[5]

भारत देश की प्राकृतिक सुन्दरता अनन्त है। यहां विविध नदियां मनुज को अमृत प्रदान करती हैं। हिमालय स्वयं इस देश का मुकुट है जो प्रहरी बनकर देश की रक्षा करता है। यहां चारो ओर हरियाली प्राप्त होती है। विश्व के सभी देशों की प्रकृति को भारतदेश ने अपने हृदय में बसा लिया है। रामनरेश त्रिपाठी जी अपनी रचना 'वह कौन सा देश' है, में प्रकृति की अलौकिकता के साथ देश की सौम्यता को दर्शाते हैं-

''मन मोहनी प्रकृति की गोद में जो बसा है।
सुख स्वर्ग सा जहाँ है वह देश कौन सा है
जिसका चरण निरन्तर रतनेश धो रहा है।

जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन सा है''[6]

छायावादी काव्यधारा में प्रसाद जी का नाम प्रमुख है। वैसे तो हम लोग छायावाद को स्वच्छंदतावाद से जोड़कर उसकी इतिश्री कर देते हैं, जबकि छायावादी कवियों ने राष्ट्रीय चेतन से युक्त रचनाऐं लिखी हैं। इसमें राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति तीन तरह से हुई है- 1. भारत के स्वर्णिम अतीत का गौरवगान, 2. भारत की दयनीय दशा का उल्लेख और 3. भारत के उज्जवल भविष्य की युग दृष्टि आदि। छायावादी कवि राष्ट्रीय गीत सरल और सहज ढंग से सभी के सामने रखते हैं। प्रसाद जी 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' रचना के माध्यम से देश के लोगों का आवाहन करते हुए राष्ट्रीय चेतना की बात करते हैं तथा स्वतन्त्र राष्ट्र को देखना चाहते हैं। प्रसाद जी कहते हैं-

''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से / प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्जवला / स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो / दृढ़ प्रतिज्ञा सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है / बढ़े चलो, बढ़े चलो।।''[7]

प्रसाद जी की कविताओं में रहस्य भावना का संचार होने पर भी इतिहास की गौरवगाथा की सुन्दर छवि उद्धृत है। प्रसाद जी भारत भूमि के गौरव को बढ़ाने के लिए कामायनी जैसा महाकाव्य प्रदान करते हैं जिसमें राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत होकर मातृभूमि की वन्दना करते हैं।

''अरूण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुंच अंजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा।''[8]

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ओज के कवि हैं। उनकी राम की शक्ति पूजा, भारती वन्दना, बादलराग इत्यादि राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व की रचनाएँ हैं, जिसमें निराला जी राष्ट्रहित के लिए मानवतावादी समाज की स्थापना को प्रमुख मानते हैं तथा भारतीय गौरव का बखान करते हुए भविष्य निर्माण करने हेतु प्रेरित करते हैं

''भारति, जय विजय करे / कनक-शस्य-कमल धरे।
लंका पदस्थ-शतदल / गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण-युगल / स्तव कर बहु अर्थ भरे।।''[9]

निराला जी गरीब, मजलूम, असहाय की वेदना में खुद को खड़ा पाते हैं । उनकी गरीबी, भुखमरी, दीनता को अपनी कलम में स्थान देकर देश के सामने समाज के नंगे सच को उजागर करते हैं । निराला जी 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' कविता के माध्यम से दबे-कुचले समाज को साहित्य की मुख्यधारा में लाने का काम करते हैं । गुलामी के कई वर्ष होने पर भारतीयों के हृदय में निराशा घर कर लेती है। ऐसे समय निराला जी राष्ट्र प्रेम जगाकर निराशा को दूर करते हैं तथा भारतीयों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बांधते हुए ओज एवं ज्ञान से परिपूर्ण करते हैं । देश के गौरवशाली महापुरूषों के पराक्रम, ज्ञान एवं ओज को याद दिलाते हुए खण्डहर के प्रति अपनी रचना में कहते हैं-

आर्त भारत! जनक हूँ मैं / जैमिनी, पंतजलि, व्यास ऋषियों का
मेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर / तेरा ही बढ़ाया मान।
रामकृष्ण भीमार्जुन भीष्म / मर देवों में।''[10]

प्रकृति के सुकुमार कवि पन्त जी भारत देश की हरी-भरी धरती, गंगा-यमुना की संस्कृति को उद्धृत कर देश प्रेम को दर्शाते हैं । भारत भूमि पर दैन्य, दानव, असभ्य, निर्धन, अशिक्षित, मूर्ख, संकोची आदि सभी प्रकार की मनोवृत्ति वाले लोग निवास करते हैं, लेकिन भारत भूमि बिना किसी भेदभाव के सभी लोगों का समान रूप से पालन-पोषण करती है। यहां विविध धर्मो, जातियों, भाषाओं के लोग एक साथ निवास करते हैं तथा राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को बरकरार रखते हैं। इस संदर्भ में पंत जी अपनी कविता 'भारतमाता' में कहते हैं-

''भारतमाता / ग्रामवासिनी
खेतो में फैला है श्यामल / धूलभरा मैला सा अचंल।
गंगा यमुना में आँसू-जल / मिट्टी की प्रतिमा / उदासिनी।

दैत्य जड़ित, अपलक नतचितवन / अंधेरों में चिर
नीरव रोदनं
युग-युग के तम से विषण्णमन / वह अपने घर में
प्रवासिनी।''[11]

बालकृष्ण शर्मा नवीन मूलतः राष्ट्रकवि हैं। इनकी कविताओं में राष्ट्रीय एकता, अखण्डता व स्वतन्त्र देश की आत्मा का स्पन्दन है। जिन दिनों युवा रचनाकार काव्य के बगीचे में प्रवेश कर मधुरभावों का श्रृंगार कर रहे थे, उस समय स्वतन्त्रता सेनानियों के साथ महात्मा गांधी जी निराश जनता को शक्ति एवं चेतना से युक्त कर राष्ट्रीय भावना की ओर भेज रहे थे। इसी कड़ी में बालकृष्ण शर्मा नवीन भी महात्मा गांधी के पदचिन्हों पर चलकर स्वाधीनता आन्दोलन में कूद पड़े। इसके लिए उन्हें जेल में डाला गया जहाँ पर उन्होनें जुल्म और अत्याचार सहे। वे गरीबों की दयनीय दशा को देखकर करूणा से भर गए। इसके बाद नवीन जी ने अंग्रेजी शासन सत्ता को विध्वंस करने वाली तान को छेड़ दिया जिससे युवाओं में उत्साह एवं उमंग का संचार हुआ, क्योंकि किसी भी सत्ता को स्थापित करने के लिए पूर्व की सत्ता को विध्वसं करना जरूरी होता है। इस संदर्भ में नवीन जी कहते हैं-

''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ / जिससे उथल पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर से आये / एक हिलोर उधर से आए।
प्राणों के लाले पड़ जाए / त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए।
नाश और सत्यानाशों का / धुंआधार नभ में छा जाए।''[12]

'हम विषपायी जनम' काव्यग्रन्थ नवीन जी की मृत्यु के बाद प्रकाशित होता है। इस साहित्य निधि को सामने लाने में प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नागेन्द्र का प्रमुख योगदान है। इस काव्य ग्रन्थ में नवीन जी की ओजस्वी कविताओं का भण्डार है तथा आजीवन किए संघर्ष, तप का परिणाम है। 'सिरजन की ललकारें' कविता में नवीन जी कहते हैं-

''धधक रहा है सब भूमण्डल / भूधर खौल रहे निशि वासर
सखे, आज शोलों की बारिश / नभ से होती है झर-झर
घन गर्जन से भी प्रचण्डतर / शतध्वनियों का गर्जन भीषण
घर्षण करता है मानव हिम / जग में मचा और संघर्षण''[13]

डॉ. रामकुमार वर्मा कवि के साथ ही प्रख्यात आलोचक भी हैं। इन्होने अपनी रचनाओं के माध्यम से क्षत्रिय के पराक्रम के साथ क्षत्राणी के परित्याग को दर्शाया है। जब कोई क्षत्रिय राष्ट्र के लिए युद्ध के मैदान में जाता है, तो क्षत्राणी बेहिचक रणभूमि पर भेजती है। रामकुमार वर्मा जी राजपूतों के राष्ट्रप्रेम और बलिदान का स्मरण दिलाते हुए 'चित्तौड़ की चिता' नामक कविता में कहते हैं-

''कभी थे राजपूत अति न्यून / किन्तु था प्रिय स्वदेश अभिमान,
नारियों ने भी ली असि तान / चढ़ाये रण में आत्म प्रसून।''[14]

राष्ट्रद्रष्टा, युग निर्माता, राष्ट्रीय भावना का संचार करने वाले कवियों में प्रमुख नाम माखनलाल चतुर्वेदी जी का आता है। इन्होने देशहित के लिए सम्पूर्ण जीवन अर्पण कर दिया था तथा साहित्यकारों द्वारा 'एक भारतीय आत्मा' उपनाम चतुर्वेदी जी का रखा गया। चतुर्वेदी जी के उपनाम के सन्दर्भ में डॉ. सुनील कुमार परील जी कहते हैं- ''एक भारतीय आत्मा ऐसा नाम है, जिसने भारत की परतन्त्रता को स्वीकार करने के बजाय उसकी स्वतन्त्रता के लिए कारावास का कष्ट झेलने में भी सुख का अनुभव किया। भारतीय आत्मा शब्द का संकेत है कि भारत मेरा देश है और मैं इसकी आत्मा हूँ। यह एक ऐसा उपनाम है, जो कवि के मानस में व्याप्त भारत देश पर अपने नैसर्गिक अधिकार को दर्शाता है। सच में माखनलाल जी में देश प्रेम कूट-कूट

भरा था।''[15]

माखनलाल चतुर्वेदी जी की 'पुष्प की अभिलाषा' रचना सर्वाधिक चर्चित है। पुष्प के माध्यम में राष्ट्रीय भावना का प्रबल स्वर मुखरित हुआ है। इसमें पुष्प केवल प्रतीक के रूप में प्रकट किया गया है। वास्तविकता में भारतीयों के हृदय में देश प्रेम का संचार करना कवि का उद्देश्य है। पुष्प की अभिलाषा जब देशभक्तों के चरणो में अर्पित होने की है, तब कवि भारतीयों के हृदय में राष्ट्रीय चेतना का संचार करते हैं। वे कहते हैं-

''चाह नहीं मैं सुरबाला के, गहनों मे गूँथा जाऊँ
चाह नही प्रेमी माला में, बिंध प्यारी को ललचाऊँ
चाह नही सम्राटों के शव, पर हे हरि, डाला जाऊँ
चाह नही देवों के सिर पर, चढ़ू भाग्य पर इठलाऊँ
मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर
अनेक''[16]

किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा वहां का सिपाही करता है। एक सैनिक अपने परिवार, नाते- रिश्तेदारों को छोड़कर देश की सुरक्षा के लिए दुश्मनों की गोली के निशाने पर सदा बेखौफ खड़ा रहता है। माखनलाल चतुर्वेदी जी 'सिपाही' कविता में सैनिक के कर्म को याद दिलाते हैं तथा दुश्मन को गोली मारने की जगह पर हुंकार भरने का आग्रह करते हैं, जिससे दुश्मन में सेना का खौफ बना रहे। वे कहते हैं-

"बोल अरे सेनापति मेरे! / मन की घुंडी खोल,
जल थल नभ, हिल-डुल जाने दे / तू किंचित् मत डोल।
दे हथियार या कि मत दे तू / पर तू कर हुंकार,
ज्ञातों को मत, अज्ञातों को / तू इस बार पुकार!
धीरज रोग, प्रतीक्षा चिन्ता / सपने बने तबाही।
कह तैयार! द्वार खुलने दे / मैं हूँ एक सिपाही।''[17]

राष्ट्रीय चेतना के संचार में भारत देश को बहुत से कवि मिले, जिसमें एक मात्र लेखिका के रूप में सुभद्रा कुमारी चौहान जी का नाम सम्मान के साथ आता है। 'चमक उठी सन् संतावन की' कविता के माध्यम से लोक में सर्वाधिक प्रभाव पड़ा, जिससे इतिहास को निखारने की प्रेरणा प्राप्त हुई। रानी लक्ष्मीबाई से लेकर कई राष्ट्रभक्तों का चित्र उकेरकर सुभद्रा कुमारी चौहान ने जनमानस में स्वराष्ट्र के लिए हलचल पैदा कर दी। सुभद्रा कुमारी चौहान ने राष्ट्र को जगाने के लिए पुराख्यानों तथा श्रेष्ठ देशभक्तों के जीवन संघर्ष के साथ नये कलेवर में अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया। सुभद्राकुमारी चौहान अपनी कविता 'विजयदशमी' में कहती हैं-

''दो विजये! वह आत्मिक बल दो वह हुंकार मचाने दो।
अपनी निर्बल आवाजों से दुनिया को दहलाने दो।
जय स्वतंत्रिणी भारत माँ यो कहकर मुकुट लगाने दो।
हमें नहीं इस भूमण्डल को माँ पर बलि-बलि जाने दो।
छेड़ दिया संग्राम, रहेगी हलचल आठो याम सखी।
असहयोग सर तान खड़ा है, भारत का श्रीमान् सखी।
भारत लक्ष्मी लौटाने को रच दें लंका काण्ड सखी।''[18]

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में राष्ट्रीय चेतना के स्वर स्पष्ट परिदृश्य होते हैं। कवियों ने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से लेखकीय दायित्व को समझते हुए राष्ट्र प्रेम के माध्यम से देश को गढ़ने का काम किया है।

संदर्भ-

1. http://www.anubhuti-hindi.org
2. कविता का आधुनिक परिप्रेक्ष्य, मत्स्येन्द्र शुक्ल, आचार्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986, पृष्ठ 50
3. वही, पृष्ठ 43-44
4. वही, पृष्ठ 54
5. गगनांचल पत्रिका, सितम्बर-अक्टूबर 2016, भारतीय संस्कृतिक संबंध, नई दिल्ली, पृष्ठ 15
6.www. bharatdiscovery.org/india/ रामनरेश

त्रिपाठी
7. प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, वाचस्पति पाठक, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 51
8. गगनांचल पत्रिका, पृष्ठ 15
9. प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, वाचस्पति पाठक, पृष्ठ 99
10. गगनांचल पत्रिका, पृष्ठ 15
11. प्रसाद, निराला, पंत महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, वाचस्पति पाठक, पृष्ठ 172
12. कविता का आधुनिक परिप्रेक्ष्य, मत्स्येन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 64
13. वही, पृष्ठ 63
14. गगनांचल पत्रिका, पृष्ठ 15
15. माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना, सुनील कुमार परीट, www.jayvijay.co
16. वही, www.jayvijay.co
17. वही, www.jayvijay.co
.18 https://drshailendrasharma.blogspot.com/2013/01/blog-post.html

शोध छात्र, हिंदी विभाग
गाँधी महाविद्यालय,
उरई, जनपद- जालौन

5

वर्तमान हिंदी साहित्य : दृष्टि और मूल्यांकन

प्रो. हेमराज सुंदर

साहित्यकार साहित्य सृजन इसलिए करता है क्योंकि उसके चारों ओर की परिस्थितियँ उसे लेखन के लिए बाध्य अथवा प्रेरित करती हैं। साहित्यकार सामाजिक जीवन से प्रेरणा प्राप्त करता है पर वर्तमान साहित्यकार राजनीति से भी उतना ही प्रभावित दिखता है। स्मरण रहे कि साहित्यकार का अपना कुछ उत्तरदायित्व भी होता है। पहले साहित्य आनंद प्राप्ति के लिए लिखा जाता था किंतु वर्तमान साहित्य का उद्देश्य मात्र आनंद प्रदान करना नहीं रह गया है। आज का साहित्यकार चुनौतियों के बीच संभावनाएं भी तलाशता है। समस्याओं के अध्ययन के साथ-साथ उनका समाधान भी ढूंढता है।

आज भीड़ तंत्र का जमाना है और कानून को यह नहीं मानती है। यह भीड़ आक्रांत है और किसी भी हद तक जा सकती है। इसे रोकने की कोशिश बेकार सा लगता है। आज का साहित्यकार भी इसी से प्रेरित है। जी हुजूरी और चमचागिरी का युग गया। आज के साहित्य में परिवर्तन की भावना है। आज के कृषक जीवन पर दृष्टि डाल कर देखिए। इतनी मेहनत के बाद भी उसकी जिंदगी गिरवी पड़ी है। उसे और उसके परिवार को भरपेट अनाज नसीब नहीं हो रहा है। कहीं न कहीं हिसाब किताब में गड़बड़ जरूर है। कहना न होगा कि वर्तमान हिंदी साहित्य की दृष्टि इस ओर टिकी हुई है। अपनी एक क्षणिका का उदाहरण देना चाहूँगा-

"दुनिया एक एश-ट्रे
जिसमें मैं और मेरे जैसे
लाखों उपेक्षित
ठूंसे हुए हैं बेतरतीब
सिग्रेट के अधजले टुकड़ों की तरह
कुछ तो बुझ चुके/ कुछ बुझ रहे
कुछ धुँधवा रहे
और-कुछ सुलग रहे।.."[1]

"हितेन साहित्यम्" ही साहित्य है। सहित का बोध जिसमें हो वही साहित्य है। जीवन का वास्तविक स्वरूप हर साहित्य में देखा जा सकता है। साहित्यकार समाज में रहकर ही साहित्य की रचना करता है। अतएव साहित्य में सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब देखने को मिलता है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। जब-जब किन्ही कारणों से जीवन लड़खड़ाता है तब साहित्य उसे सहारा देता है। अतः साहित्य समाज की अनुगामी ही नहीं, संचालक भी है। साहित्यकारों को चाहिए कि वह समाजोपयोगी साहित्य का निर्माण करें। उनका साहित्य सार्थक सिद्ध होगा यदि वह जीवन निर्माण करने में सफल हो सका। उत्तम साहित्य से समाज में सुधार होता है। जो काम अस्त्र-शस्त्र नहीं कर सकते, साहित्य आसानी से कर देता है। आज का समाज काफी हद तक विसंस्कृति की ओर अग्रसर हो रहा है। यह एक बहुत भारी खतरा है। साहित्य को इस गुत्थी को सुलझाने में आगे आना होगा।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतः समाज में प्रचलित रीति- रिवाज, आचार- विचार और परंपराओं का वास्तविक चित्रण साहित्य में होना चाहिए, जिससे उस समय विशेष की सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन सहज ही किया जा सके। साहित्यकार यदि अपने साहित्य में राष्ट्र की वास्तविक दशाओं का चित्रण करता है तो उसका साहित्य राष्ट्र साहित्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है अन्यथा नहीं। इसी मान्यता के आधार पर मैथिलीशरण गुप्त

और रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्रकवि कहलाए।

मात्र सामाजिक परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण करने से साहित्यकार अपने कर्तव्य से छुटकारा नहीं पा जाता है, बल्कि समाज में जो बुराइयाँ प्रचलित हैं, जो कमियां दिखलाई पड़ती हैं उनकी आलोचना करना तथा उन्हें दूर करने का सच्चा मार्ग प्रदर्शित करना साहित्यकार का कर्त्तव्य होता है। आधुनिक साहित्यकारों ने इसका निर्वाह किया है। साहित्य संस्कृति को नष्ट होने से बचाता है। पूर्वजों से जो ज्ञान- राशि हमें मिलती है उसे सुरक्षित रखता है। साहित्यकार मानव जीवन से ही प्रेरणा पाकर साहित्य की रचना करता है। अतः साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसमें मानव जीवन के कल्याण की भावना निहित हो।

आधुनिक हिंदी साहित्य का उद्देश्य पारस्परिक सहयोग की भावना उत्पन्न करना है। साहित्य के मूल में स्वयं को दूसरों के निकट लाने की भावना होनी चाहिए। यह तभी संभव हो सकता है जबकि विचारों और भावों का पारस्परिक लेन-देन किया जाए। इस प्रकार साहित्य के तीन प्रमुख उद्देश्य माने गए हैं- सत्यं, शिवम् और सुंदरम्। साहित्य में सत्य को स्थान मिलना चाहिए। वह सत्य कल्याणकारी हो! उस कल्याणकारी सत्य की अभिव्यक्ति सुंदर ढंग से की जानी चाहिए।

समय के साथ हम हर संभव खिलवाड़ कर पाने में आज समर्थ हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हर चीज हासिल करने की हमें आज बहुत जल्दी है। हर वक्त हमारी नजर या तो कलाई पर स्थित घड़ी की तरफ रहती है अथवा सामने टंकी दीवार घड़ी पर। आज की जीवन पद्धति का सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि आपके पास चाहे दुनिया की हर कीमती वस्तु उपलब्ध क्यों न हो, एक बहुत बहुमूल्य चीज आपके पास नहीं है, और वह है 'समय'। वैसे लगती तो यह बहुत छोटी सी बात है, पर इसका प्रकोप आज हर व्यक्ति पर बिखरा पड़ा है। आज ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने की होड़ एवं हर छोटे-बड़े साधन जुटाने की हमें इतनी जल्दी है कि हर किसी और के साथ वक्त जाया कर सकते हैं, पर खुद अपने लिए हमारे पास समय नहीं है। आधुनिक साहित्य में इसका बखूबी चित्रण हो रहा है। तेज रफ्तार जिंदगी और मानसिक तनाव कहानियों-उपन्यासों की विषयवस्तु बनी हुई हैं। आज की आपाधापी, तंत्रास भरी त्रासदी, भाई-भतीजावाद, तंद्रा यात्रा, सिद्धांतहीन राजनीति, अराजकता और टूटते हुए मानव मूल्यों को वर्तमान साहित्यकारों ने अपने लेखन का प्रतिपाध बनाया है। इन्हीं के इर्द-गिर्द आधुनिक हिंदी साहित्य सांस उसांस ले रहा है। वर्तमान लेखकों में मौलिक प्रतिभा तथा सर्जनात्मक उर्जा देखा जा सकता है। हमें आक्रोश का भाव हर मोड़ पर देखने को मिलता है । इसलिए

"भाई का भाई से, राष्ट्र का राष्ट्र से
व्यक्ति का विश्व से प्यार हो
समय जटिल सरल सहज व्यवहार हो।
मनुज- मनुज से बिछुड़ रहा,
मेल- मिलाप से जीवन का निखार हो।
प्रेम - पथ विस्तार हो।"[2]

"आज के युग में व्यक्ति दिशाहीन एवं दिग्भ्रमित सा हो गया है। उसमें मूल्य, मूल्य तंत्र और उस मूल्य तंत्र में मूल्यों का प्राथमिकता क्रम क्या हो, इस ज्ञान के प्रति अंधकारमय स्थिति है। आज पूरे विश्व में मूल्यों का ह्रास तेजी से हो रहा है। आधुनिक साहित्य पुकार-पुकार कर मूल्यों के ह्रास की कहानी कह रही है"[3] कहीं चोरी –डकैती, कहीं शोषण, कहीं बलात्कार, कहीं आतंकवाद तो कहीं भ्रष्टाचार। हर समय संघर्ष, मानसिक तनाव, अविश्वास, असुरक्षा की भावना हमें पुनः बर्बरता के युग की ओर ले जा रही है। आधुनिक हिंदी साहित्य जीवन - मूल्यों की पुनर्स्थापना में अपना पूरा योगदान दे रहा है।

वर्तमान समय में स्त्रियों को समाज में वही मान सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्रदान किए जाने की आवश्यकता है जो उन्हें पौराणिक ग्रंथों में उपलब्ध थी। किसी भी देश की सामाजिक प्रगति का सर्वोत्कृष्ट मापदंड उस देश में उपलब्ध स्त्रियों के विकास के अवसर तथा उनकी सामाजिक उन्नति में निहित है। आज भी स्त्री दशा में सुधार की आवश्यकता है। स्त्रियों की शैक्षिक प्रगति हेतु समान अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए। महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु उनको शैक्षिक तथा प्रशासनिक रूप से निपुण करने के लिए आरक्षण

जैसे अवधारणाओं का उपयोग किया जाना चाहिए। आंशिक रूप से यह कार्य वर्तमान हिंदी साहित्य कर रहा है। मेरे विचार से स्त्रियों को वैवाहिक स्वतंत्रताएं प्राप्त होनी चाहिए। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से बाल विवाह और बहुविवाह जैसे विवरण बहुत कम संख्या में सामने आ रही है। यह शुभ लक्षण है। प्रेम विवाह और अंतर्जातीय विवाह के कुछ फायदे हैं तो नुकसान भी हैं। वर्तमान साहित्य में इनको विषय बनाया गया है। वर्तमान काल में स्त्रियों को पैतृक संपत्ति में हिस्सा दिए जाने की वकालत जारी है।

वर्तमान साहित्य आम आदमी का प्रतिनिधित्व करता है जो राशन की लाइनों और दफ्तरों का चक्कर लगाता मिलता है। बेरोजगारी और नित्य बढ़ती महंगाई की समस्या ने आम जनता को अक्रांत कर दिया है। वह नित्य परिवर्तन की चाह कर रही है। यह परिवर्तन सत्ता पलट से लेकर विप्लव की सीमा को पार कर सकता है।

प्रकृति की क्रूरता, आगजनी, बाढ़ से उत्पन्न परिस्थितियां भी समाज और व्यवस्था को ललकार रही हैं। आजकल कोरोना वायरस जैसी स्थितियां भी और मनोस्थितियां हमें नित्य झकझोर रही हैं। हर आदमी परेशान, विवश और लाचार की स्थिति से गुजर रहा है। वर्तमान हिंदी साहित्य इन से अछूता कैसे रह सकता है? इस कोरोना वायरस के कारण बहुत सारे लोग कमजोर पड़ गए हैं। उनका आत्मविश्वास खोता जा रहा है। हमारे वर्तमान साहित्यकारों को चाहिए कि वह उनका विश्वास बनाए रखें।

आज समाज में नकारात्मक तत्व (नेगेटिविटी) पूरे विश्व में व्याप्त हो गया है। दोषारोपण ने जनजीवन को विषैला कर दिया है। कोई भी अपना दोष मानने को तैयार नहीं है। कोई भी अपनी हार स्वीकार नहीं करता। दोष मेरा हो या आपका हो, सर झुका कर पराजय स्वीकार करने में ही व्यक्ति की भलाई है। अन्यथा तनाव और क्रोध समाज और साहित्य में दिखाई देगा।

वर्तमान हिंदी साहित्य के विषय कुछ इस प्रकार हैं- बाजारवाद, युद्ध की विभीषिका, कोरोना महामारी का प्रकोप, बाढ़ और आगजनी, प्रतिस्पर्धा, मानवीय अवमूल्यन, बेरोजगारी का अभिशाप, न्याय-अन्याय, चारित्रिक विघटन, नारी दुर्दशा, भ्रष्टाचार और लूटपाट, नशीली दवाओं का सेवन, बलात्कार आदि।

वर्तमान में कहानियां कम अपितु लघुकथाएं अधिक लिखी जा रही हैं और उपन्यास उससे भी कम। मानव की विकृत मानसिकता पर प्रहार करते हुए उसे संस्कृति और मानव मूल्य की सही दिशा में प्रेरित करना ही लघुकथा लेखन का मुख्य लक्ष्य रहा है। लेखन के क्षेत्र में नौसीखिए लघु कथाकार, लघुकथा के तकाजों को न तो समझते हैं न समझने की चिंता करते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि कथ्य कितना ही महान हो उसकी कलाहीन अभिव्यक्ति किसी भी साहित्य विधा का रूप नहीं ले सकती।

'लघुकथा लेखन इतना सरल नहीं है जितना कुछ लेखकों ने समझ रखा है। यह कोई आरोपित या अस्वाभाविक विधा भी नहीं है बल्कि यह आज के व्यस्त युग की मांग के अनुरूप विसंगत संदर्भ की टकराहट के बीच उपजी एक ऐसी समर्थ विधा है जो देखने में छोटी होते हुए भी प्रभावशाली असर रखती है।'[4] लघुकथाकार लघुकथाएं लिखते हैं लेकिन उनके सोच का दायरा लघु नहीं होना चाहिए। उसे तो इतना व्यापक होना चाहिए कि इसमें संसार समाहित हो जाए। ऐसे विचार लिखे जाने चाहिए कि पाठक के दिल दिमाग को झकझोर सके।

लघुकथा का कलेवर संक्षिप्त अवश्य होता है लेकिन उसका कैनवास समाज के लिए आइना का भी काम करता है। तभी तो साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। लंबी- लंबी कहानियों एवं उपन्यासों के बीच भी लघुकथा की छटा देखते ही बनती है। लघुकथाएं जीवन के अनछुए से पृष्ठों को रूपायित किए जाने में ज्यादा प्रभावी होती हैं। बहुत छोटी सी बात कितने गहरे तक आघात करती है, यह कला लघुकथा का स्पंदन है। लघुकथाएं जीवन के उस मानवीय एवं सामाजिक सत्य को उड़ेल कर सामने रखने में समर्थ होती हैं, जिसे अन्य कला स्वरूप में खोज पाना कठिन है। चिंतन, मनन और कथन की त्रिवेणी लघुकथा में समाहित होती है।[5]

लघुकथाकार साहित्यकार की श्रेणी में आकर खड़ा

हो गया है। जिस प्रकार एक कहानी लिखकर कई कहानीकार साहित्यकार बनकर अमर हो गए, उसी प्रकार कई लघुकथाकार अच्छी लघुकथाएं लिखकर साहित्यकार कहलाने लगे हैं। लघुकथाकारों की बढ़ती संख्या को देखकर विरोध के स्वर भी सुनाई पड़ने लगे हैं। एक समय था जब लघुकथा को हीन भावना से देखा जाता था लेकिन समय बदला, समय ने लघुकथा के महत्व को समझा तथा पाठकों को बोध कथाएं, मार्मिक कथाएं, लोक कथाएं, प्राचीन कथाएं तथा ऐसे न जाने कितनी कथाएं दीं।

वर्तमान साहित्य में जो लघुकथाएं लिखी जा रही हैं उनका स्वाद कुछ अधिक कसैला तथा कड़ुवा है क्योंकि इनमें विकृत समाज की स्पष्ट तस्वीर दिखाई जाती है। आज की लघुकथा, लघुता में विशाल रूप रखते हुए भी विनत भाव रखती है। कहावत मशहूर है कि प्रतिभा वह कराती है जो उसे करना है और बुद्धि वह करती है जो वह कर पाती है। इसी प्रकार हथौड़े की चोट शीशे को तोड़ देती है लेकिन लोहे को फौलाद बनाती है।

लघुकथा लिखते समय बड़े संयम की आवश्यकता होती है। लघुकथाकार की जरा सी चूक से लघुकथा भटक सकती है। इसलिए पूर्ण सतर्कता और संयम के साथ है थोड़े में बहुत कुछ समाहित करने की कलात्मक क्षमता अर्जित करने का ध्येय होना चाहिए। कम लिखे मगर अच्छा लिखे। लघुकथा लिखना और उसे प्रकाशित करवाना मात्र हमारा उद्देश्य नहीं होना चाहिए बल्कि लघु कलेवर में प्रभाव पैदा करने के लिए कथानक और कथ्य को धारदार बनाने के साथ-साथ भाषिक स्तर पर शब्द योजना और वाक्य विन्यास के विषय में भी सतर्क होना आवश्यक है तभी कहीं हम एक अच्छी रचना का सृजन कर पाएंगे।[6]

वर्तमान हिंदी साहित्य में निर्भयता का निनाद निरंतर निर्नादित होता रहता है। साहित्य के प्राय: सभी विधाओं में समाज की कुरीतियों, गलत परंपराओं एवं रूढ़ियों का खुलकर विरोध हो रहा है। मानव के अंत: स्थल की शक्ति जगा रहा है। आज का सजग साहित्यकार समाज की पशुता और दानवता को भस्म कर देना चाहता है जिससे वह अज्ञान के जाल में फंसे हुए जनजीवन को निकाल सके। आज विश्व भर में जीवन का विकास है तो विनाश भी है। वर्तमान हिंदी के साहित्यकारों से मेरा यही अनुरोध है कि वह संपूर्ण मानव जाति के उन्नयन के लिए संकल्प लेकर साहित्य सृजन करें।

संदर्भ सूची-

1.हेमराज सुंदर, सागर मोती, तृतीय सं. हिंदी साहित्य अकादमी, मारीशस, 2013, पृष्ठ 37

2.हेमराज सुंदर, चेतना, द्वितीय सं., हिंदी साहित्य अकादमी, मारीशस, 2013, पृष्ठ 20

3.शोध संचार बुलेटिन, लखनऊ, वॉल्यूम 4, ईश्यू 16, अक्टूबर-दिसंबर, 2014, पृष्ठ 95

4.लघुकथा अभिव्यक्ति विशेषांक, अक्टूबर- मार्च, 2010, पृष्ठ 4

5.श्रृंखला लघु कथाएं सं. मणि मुकुल, गुंजन कला सदन परिवार जबलपुर, 2008, भूमिका

6. वही, पृष्ठ 4

पूर्व विभागाध्यक्ष,
सृजनात्मक लेखन एवं प्रकाशन विभाग,
महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

6

महादेवी वर्मा के काव्य में बौद्ध दर्शन का प्रभाव

डॉ. विनीता शुक्ला

हिन्दी कविता में छायावाद युग द्विवेदी युग के उपरान्त आया। द्विवेदी युग की कविता नीरस, उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक थी। छायावाद में इसके विरूद्ध विद्रोह करते हुए भावान्मेश युक्त कविता लिखी गई। छायावादी काव्य प्राचीन संस्कृत साहित्य, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य से भी प्रभावित हुई। इसमें बौद्धदर्शन और सर्ववादी दर्शन का भी प्रभाव लक्षित होता है। छायावाद युग उस सांस्कृतिक और साहित्यिक जागरण का सार्वभौम विकास काल था, जिसका आरम्भ राष्ट्रीय परिधि में भारतेन्दु युग से हुआ था। छायावादी कवियों के काव्य में सूक्ष्म भावात्मक दर्शन का ही नहीं, बल्कि छाया से उसके सूक्ष्मकला अभिव्यंजना का भी परिचय प्राप्त होता है। कवियों का काव्यकला में वाच्यार्थ की अपेक्षा लक्षणिकता और घ्वन्यात्मकता है।

शैली में राग की नवीन व्यंजकता भी परिलक्षित होती है। भाव के अनुरूप ही छायावाद की भाषा और छंद में भी रागात्मकता और रसात्मकता की मनोहरता परिलक्षित होती है। ब्रजभाषा के पश्चात छायावाद के माध्यम से गतिकाव्य का पुनरूथान हुआ। छायावादी युग के प्रतिनिधि कवि- जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा हैं। इन्हें छायावाद के चार स्तम्भ भी कहा गया। गीतकाव्य के पश्चात छायावाद में महाकाव्य की रचना की लहर चल पड़ी थी। छायावादी कवि स्वात्म के भव के साथ एकान्त के स्वगत जगत् से सार्वजनिक जगत् की ओर अग्रसर हुए। प्रसाद जी की कामायनी और पंत जी का लोकायतन इसका सुन्दर प्रमाण है।

छायावादी शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहां उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है। अर्थात जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। इस अर्थ का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में होता है। छायावाद का सामान्य अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। छायावादी कवि को अज्ञात सत्ता के प्रति एक विशेष आकर्षण रहा है। वह प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में इसी सत्ता के दर्शन करता है। उसका इस अनंत के प्रति प्रमुख रूप से विहमय तथा जिज्ञासा का भाव है। इनका रहस्य जिज्ञासामूलक है, निराला तत्व ज्ञान के कारण, तो पंत प्राकृतिक सौन्दर्य से रहस्योन्मुख हुए। प्रेम और वेदना ने महादेवी जी को रहस्योन्मुख किया तो प्रसाद ने उस परमसत्ता को अपने बाहर देखा। महादेवी जी के काव्य में रहस्य साधना की दृढता दृष्टिगत होती है। महादेवी के काव्य में रहस्यवाद के रमणीय दर्शन मिलते है-

सुनहरी आशाओं का छोर
बुलाएगा इसको अज्ञात
किसी स्मृति वीणा का राग
बना देगा इसको उद्भ्रांत।[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में विराट सत्ता के रहस्य को जानने की उत्सुकता महादेवी जी के मन में उत्पन्न होती हैं-

पर शेष नहीं होगी वह मेरे प्राणों की क्रीडा
तुमको पीड़ा में ढूंढा, तुममें ढूंढूगी पीड़ा।[2]

महादेवी जी अपनी पीड़ा में भी अपने प्रिय को ही ढूँढती है, अतः छायावादी काव्य की अभिव्यजंना पद्धति भी नवीनता और सरसता लिए हुए है। छायावादी काव्य में जीवन की सूक्ष्म-निभूत स्थितियों

को आकार प्राप्त हुआ, इसलिए छायावादी शैली में मानवीकरण का विशेष महत्व रहा है। महादेवी जी की मानवीकरण चित्रण से युक्त पक्तियां प्रस्तुत है-

झर चुके तारक-कुसुम जब
रश्मियों के रजत-पल्लव,
सन्धि में आलोक-तम की
क्या नही नभ जानता तब,

पार से , अज्ञात वासन्ती दिवस - रथ चल चुका है।[3]

प्रस्तुत पंक्तियों में अर्थ के तीन पक्षों का एक साथ निर्वाह किया गया है। यहा प्रतिपाद्य तो है जीवन की साधना का वह अन्तिम क्षण जब इस लौकिक जीवन की समाप्ति के बाद एक लोकात्तर आनन्दमय चेतना का आभास होने लगता है, किन्तु इस अर्थ के लिए दोहरा अप्रस्तुत है यों कहना चाहिए कि अप्रस्तुत दर-अप्रस्तुत है। एक अप्रस्तुत है प्रातः काल का, जब तारे तथा चन्द्रमा की किरणें धूमिल होने लगती हैं और बासन्ती प्रकाश वाले सूर्य का रथ क्षितिज के उस ओर से आता दिखाई देता है तथा दूसरा अप्रस्तुत है पतझर की समाप्ति की बेला का, जब कुसुमों और पल्लवों के झर जाने के बाद बसन्त के आगमन की सूचना मिलने लगती है। आलोक और तम की सन्धि का प्रयोग मृत्यु के लिए हुआ है और नभ की चेतना के लिए। इस प्रकार अर्थगाम्भीर्य में समानता होने पर भी छायावादी काव्य पंक्तियों में अभिव्यंजना की सूक्ष्मता का वैशिष्ट्य भी देखने को सुलभ हैं।

छायावाद अपने युग की अत्यन्त व्यापक प्रवृत्ति रही है किन्तु विचारक व समालोचक छायावाद की परिभाषा में एक मत नही रहे। विभिन्न विद्वानों ने छायावाद की परिभाषा भिन्न-भिन्न रूप में प्रस्तुत की। महादेवी वर्मा ने छायावाद को स्पष्ट करते हुए कहा - "वर्तमान आकाश से गिरी हुई संबंध रति वस्तु न होकर भूतकाल का ही बालक है जिसके जन्म का रहस्य भूतकाल में ही ढूंढा जा सकता है। हमारे छायावाद के जन्म का रहस्य भी ऐसा ही है। मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छंद घूमते घूमते थक कर वह अपने लिए सहस्त्र बंधनों का आविष्कार कर डालता है। और फिर बंधनों से ऊब कर उनकों तोड़ने में अपनी सारी शक्तियां लगा देता है। छायावाद के जन्म का मूलकारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है।"[4]

नामवर सिंह ने लिखा है कि – "कबीर, सुर, तुलसी के करुणा विगलित आर्त आत्म – निवेदन में भी परिणत वय और धीर स्वभाव का संगम है। किन्तु छायावादी कवि में उच्छवास भावुकता का अबाध उद्गार है, यहाँ तक कि भावुकता छायावाद का पर्याय हो गई।[5]

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं को समन्वित करते हुए हम कह सकते हैं कि - संसार के प्रत्येक पदार्थ में आत्मा के दर्शन करके तथ प्रत्येक प्राण में एक ही आत्मा की अनुभूति करके इस दर्शन और अनुभूति करके इस दर्शन और अनुभूति को लाक्षणिक और प्रतीक शैली द्वारा व्यक्त करना ही छायावाद है।

छायावाद की कालावधि सन् 1917 से 1936 तक मानी गई है। रामचन्द्र शुक्ल जी ने छायावाद का प्रारम्भ 1918 ई. से माना है क्योकि छायावाद के प्रमुख कवियों पंत, प्रसाद, निराला ने अपनी रचनाए इसी वर्ष के आस - पास लिखनी प्रारम्भ की थी। 1918 में प्रसाद का झरना प्रकाशित हो चुका था। 1916 मे निराला जी की कविता जूही की कली और 1918 में पंत के पल्लव की रचना हुई। छायावादी काव्य में सौन्दर्य चेतना, रहस्य भावना, राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति, आत्माभिव्यंजन, प्रकृति चित्रण एवं दु:ख और वेदना भाव की अभिव्यक्ति परमसीमा तक पहुँच गई थी। महादेवी जी को तो वेदना की कवयित्री ही कहा जाने लगा। यही नहीं आधुनिक मीरा कहकर उनकी प्रेमभावना को चरम आध्यात्मिक स्तरर पर स्थापित कर दिया गया। वह अपने वेदना विह्वल आसुओं की तुलना घनसे करती हुई कहती हैं-

आंसुओं का कोप उर दृग अश्रु की टकसाल
तरल जलकण से बने घन सा क्षणिक मृदुगात।[6]

'वेदना या दु:खवाद' भारतीय साहित्य के लिए कोई नवीन दर्शन नहीं है। वैदिक युग से 'दु:खवाद'

भारतीय साहित्य में संबद्ध रहा है । षट् दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन में वह गूँजती रही है। काव्यशास्त्रीय मूल्यों की दृष्टि से भी छायावाद प्राचीन सिद्धान्तों – विशेषकर रस-सिद्धांत के अनुरूप है और जहा तक दार्शनिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, छायावादी काव्य सर्ववाद, कर्मवाद, वेदान्त शैव दर्शन, अद्वैतवाद, भक्ति आदि पुराने सिद्धान्तों को ही व्यक्त करता दिखायी देता है।

दर्शन शब्द पाणिनी व्याकरण के अनुसार 'द्वशिर प्रेक्षणे' धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है, अतएव दर्शन शब्द का अर्थ दृष्टि या देखना, जिन तत्वों के द्वारा देखा जाए या किसी भी वस्तु जिसमें देखा जाए। इसीलिए पाणिनी ने धात्वर्थ में प्रेक्षण शब्द का प्रयोग किया। प्रकृष्ट ईक्षण जिसमें अन्तः चक्षुओं द्वारा देखना या मनन करके सोमपत्तिक निष्कर्ष निकालना ही दर्शन का अभिधेय है। इस प्रकार के प्रकृष्ट ईक्षण के साधन और फल दोनों का नाम ही दर्शन है।

सामान्य शब्दों में किसी विषय से सम्बन्धित तत्वों पर विचार करके, तत्वों का मूल्यांकन करके अपने अनुसार उस विषय के मूल्यांकन सम्बन्धी निष्कर्ष निकालना ही दर्शन है। मनु के अनुसार सम्यक् दर्शन का तात्पर्य सच्ची व शुद्ध आस्था है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक समान शुद्ध और सच्ची भावना रखना ही मानव के लिए परम ज्ञान को प्राप्त करना है और जब सम्यक् दर्शन रूपी नेत्र मिल जाते हैं, तब सारे भेदभाव मिट जाते हैं।

दर्शन शास्त्र के अन्तर्गत उत्तरमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, षट दर्शन, जैन दर्शन, न्याय दर्शन, पूर्वमीमांसा, बौद्ध दर्शन, मीमांसा दर्शन, योगदर्शन, विशिष्टद्वैत दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, भारतीय दर्शन, अध्यात्मवाद, अज्ञेयवाद, शैव दर्शन, द्वैताद्वैतवाद, सर्वात्मवाद, अरबी दर्शन, आत्मवाद, आदर्शवाद, आनंदवाद, आदि विषयों की विस्तार से व्याख्या की गई है।

बौद्ध दर्शन से अभिप्राय उस दर्शन से है जो भगवान बुद्ध के निर्वाण के बाद बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा विकसित किया गया और बाद में पूरे एशिया में उसका प्रसार हुआ। कर्म, ज्ञान एवं प्रज्ञा इसके साधन रहे हैं। 'दुख से मुक्ति' बौद्ध धर्म का मुख्य उद्देश्य रहा है अर्थात दुःख में रहते हुए भी दुःख की अनुभूति न होना ही दुःख से मुक्ति होती है। बुद्ध के उपदेश तीन पिटकों में संकलित हैं। ये सुत्त पिटक, विनय पिटक, और अभिधम्म पिटक कहलाते हैं। ये पिटक बौद्ध धर्म के आगम हैं। बौद्ध दर्शन अपने प्रारम्भिक काल में जैन दर्शन की ही भांति आचारशास्त्र के रूप में ही था। बाद में बुद्ध के उपदेशो के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने इसे आध्यात्मिक रूप प्रदान कर एक सशक्त दार्शनिक शास्त्र बनाया। बुद्ध द्वारा सर्वप्रथम सारनाथ में दिए गए उपदेशो में से चार आर्यसत्य[7] बताए गए जो इस प्रकार हैं- 'दुख समुदाय निरोध मार्गश्चित्वार आर्य बुद्धस्याभिमतानि तत्वानि।' अर्थात् - दुख का तात्पर्य संसार दुखमय है। दुख समुदाय दर्शन अर्थात् दुख उत्पन्न होने का कारण (तृष्णा) है। दुख निरोध- अर्थात दुख का निवारण सम्भव है। दुख निरोधमार्ग से तात्पर्य दुख निवारक मार्ग (अष्टांगक मार्ग)।

बौद्ध दर्शन[8] के मतानुसार इन चारों तत्वों में से दुःखसमुदाय के अन्तर्गत द्वादशनिदान (जरामरण, जाति, भय, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार तथा अविद्या) तथा दुःखनिरोध के उपायों मे अष्टांगमार्ग (सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्म, सम्यक आजीव, सम्यक प्रयत्न, सम्यक स्मृति, तथा सम्यक समाधि) का विशेष महत्व है। इसके अतिरिक्त पंचशील (अहिंसा, अस्तेय, सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह) इसके पश्चात द्वादश आयतन (पंच ज्ञानेन्द्रिया, पंच कर्मेन्द्रिया, मन और बुद्धि), जिनसे सम्यक् कर्म करना चाहिए भी आचार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। बुद्ध के अनुसार परिवर्तन ही सत्य हैं। इस परिवर्तन का कोई अपरिवर्तनीय आधार भी नहीं

है। बाह्य और आन्तरिक जगत में कुछ भी सम्पूर्ण सत्य नहीं है। वस्तु का निरन्तर परिवर्तनशील होना ही यथार्थ सत्य है। कोई भी पदार्थ एक क्षण से अधिक स्थायी नहीं रहता है। कोई भी मनुष्य दो क्षणों में एक समान नहीं रह सकता इसी प्रकार आत्मा भी क्षणिक है और मानव जीवन भी क्षणिक है। यह सिद्धान्त क्षणिकवाद कहलाया। आत्मा मनोभावों और विज्ञान की धारा है। इस प्रकार बौद्धमत में उपनिषदों के आत्मवाद का खंडन करके "अनात्मवाद" की स्थापना की गई है। अर्थात् वे आत्मा पर विश्वास नहीं करते फिर भी दु:ख और करूणा से परिपूर्ण हैं। कर्म और पुनर्जन्म को स्वीकार करते हैं। दु:ख व करूणा से द्रवित होकर बुद्ध ने वैराग्य लिया किन्तु दु:ख से परिपूर्ण हो निराश नहीं हुए बल्कि दु:ख की समाप्ति का उपाय खोजा। ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रयत्न किए, अविद्या, तृष्णा, आदि में दु:ख का मूल है, इस निष्कर्ष पर पहुचकर इनके निवारण हेतु निर्वाण का मार्ग बताया। बुद्ध ईश्वर की सत्ता नही मानते क्योंकि दुनिया प्रतित्समुत्पाद के नियम पर चलती है। प्रतित्यसमुत्पाद अर्थात कारण कार्य की श्रृंखला इस श्रृंखला के कई चक्र हैं, जिन्हें बारह अंगो में बाटा गया। अतः इस ब्रम्हाण्ड को चलाने वाला कोई नहीं है न ही कोई उत्पत्तिकर्ता है, न अंत करने वाला। तब न ही कोई प्रारम्भ है और न ही अंत। इस प्रकार बौद्ध दर्शन के तीन मूल सिद्धान्त है अनीश्वरवाद[9], अनात्मवाद[10] तथा क्षणिकवाद[11]।

बौद्ध दर्शन के अनुसार दु:ख ही अर्थ सत्य है। जन्म में, दु:ख है, जरा में दु:ख है, व्याधि और मरण में भी दु:ख है, अप्रिय वस्तु के संयोग तथा प्रिय वस्तु के वियोग में भी दु:ख है। महाभारत काल के अनुसार इस संसार में सुख की अपेक्षा दु:ख आधिक्य है। गीता में भी मानव जीवन को शाश्वत और दु:खों का आलय तथा अनित्य सुख रहित कहा गया है।

साहित्य में यही दु:खवाद 'वेदनानुभूति' की संज्ञा से अभिहित हुआ है। जीवन और जगत पर इसकी छाया प्रारम्भ से चली आ रही है और आज भी किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होती है। अतः वेदनानुभूत की व्यापकता भारतीय जीवन - दर्शन का प्रमुख आधार है। छायावाद युग में सर्वत्र वेदनानुभूति की तीव्रता विद्यमान है। इस वेदना का मानव जीवन में उतना ही महत्व है जितना आनन्दानुभूति का। मनुष्य अपने प्रत्येक कृत्य सुख प्राप्ति की इच्छा से करता है, किन्तु दु:ख सदैव जुड़ा रहता है। यही कारण है कि मानव को जीवन मे वेदना, दु:ख व निराशा का सामना करना पड़ता है। छायावादी काव्यधारा की यह वेदनानुभूति कवियों की वैयक्तिकता और संवेदनशीलता का परिणाम है।

बौद्ध दर्शन के महायान परम्परा से उत्पन्न दर्शन को स्वीकार करते हुए निर्वाण की अपेक्षा समाष्टि हित पर अधिक बल दिया। महादेवी वर्मा की रचनाओं में बौद्ध धर्म के दु:खवाद और करूणा के सिद्धान्त का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। महादेवी जी की काव्य रचनाओं में मानवीय करूणा का सागर असीम और अगाध हैं। वैयक्तिक धरातल पर लोक जीवन के मूल्यों का सहज स्पर्श है। इनके काव्य में मानव मध्य विषयक जो शक्ति है, वह लोक जीवन की इसी चेतना की पहचान की शक्ति है। कवयित्री महादेवी के काव्य में करूणा और लोकमंगल की कामना कवि की गहरी संवेदना, अध्ययन और चिन्तन का परिणाम था। समाज के प्रति गहरी सहानुभूति और युग - दर्शन की उदात्त झांकी इनके काव्य में परिलक्षित होती है, जो कि बौद्ध दर्शन के प्रभाव से परिपूर्ण रही है। असहाय वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति दिखा कर उनके दु:खों की अनुभूति करके दु:खों व कष्टों के निवारण हेतु तथा असहाय लोगों को समान अधिकार दिलाने हेतु इन्होने सराहनीय कार्य किए।

महादेवी जी ने छायावाद का मूल दर्शन सर्वात्मवाद को माना है और प्रकृति को उसका साधन। उनके छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था। इनके आनुसार छायावाद की कविता प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करके हमारे हृदय में व्यापक भावानुभूति

उत्पन्न करती है और हम समस्त विश्व के उपकरणों से एकात्मभाव सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। महादेवी के काव्य में करूणा और वेदना का व्यापक चित्रण मिलता हैं। महादेवी के गीतों में अनुभूति और विचारों में एकात्मकता प्राप्त होती है। कवयित्री स्वानुभूति को अपने काव्य में प्रस्तुत करने में सफल रही हैं। महादेवी के काव्य का मूल स्वर 'वेदना' है। काव्य की मूल प्रेरणा उनके हृदय का 'विषाद' और 'वेदना' है। कवयित्री को कविताएं मानवीय एवं आध्यत्मिक दोनों आधार भूमियों पर वेदना की धारा प्रवाहित करने की चेष्टा की गई है। इनके वेदना के स्वर में जहां एक और संसार में विश्व कल्याण के प्रसार की क्षमता रही है तो दूसरी ओर असीम के चिर वियोग से उत्पन्न पीड़ा की गूँज। वेदना ने कवयित्री को मधुमय पीड़ा दी थी। अतः वे प्रिय से मिलन ठुकराकर इनके चिर वियोग में आत्मिक सुख प्राप्त करना चाहती थी।

महादेवी में वेदना का आधिक्य है पर वह लौकिक नहीं, अपौरूषेय है। उनके दु:खवाद का दर्शन उदात्त है। उनकी काव्य वेदना आध्यात्मिक भी है। उसमें 'आत्मा' का 'परमात्मा' के प्रति तड़प् और प्रणय निवेदन है। कवि की आत्मा अपने प्रियतम का स्मरण करती हुई प्रतीत होती है। मीरा ने जिस प्रकार अपने ईश की उपासना सगुण रूप में की उसी प्रकार महादेवी जी ने उनकी अराधना निर्गुण रूप में की; यही कारण है कि महादेवी जी को 'आधुनिक मीरा' संज्ञा प्रदान की गई।

महादेवी के दु:खवाद पर बौद्ध दर्शन के सर्वदु:ख के सिद्धान्त का गहरा व स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। बुद्ध की विश्व मंगल की कामना, जो कि संसार के दुख, करूणा, वेदना, असहनीय दुर्दशा को देखकर और आत्मिक अनुभूति के माध्यम से बुद्ध के मन में उदीप्त हुई थी, जिसके कारण उन्होंने विश्व को भगवान द्वारा बनाई गई सृष्टि के दु:ख का अन्त करने व दु:खों के निवारण हेतु वैराग्य लिया। गृहस्थ जीवन त्याग कर संसार में सत्य की खोज में ज्ञान प्राप्ति हेतु निकल पड़े और अपने उपदेशो, संदेशो व सिद्धान्तों के माध्यम से विश्व में मंगलकारी सृष्टि की स्थापना की कामना करते हुए संसार में दु:ख को समाप्त कर जीवन के सत्य को समाप्त कर अपने दु:ख व वेदना को अवलम्ब बनाकर सुख वह सन्तुष्टि की प्राप्ति का संदेश दिया। ऐसी ही उदात्त बुद्ध की विश्व मंगल की कामना से उद्धरित करूणा उनके काव्य का प्राणतत्व बन गयी है। तभी तो वह विरह रूपी कमल का जन्म वेदना में मानकर करूणा में उसका स्थायी निवास बताती है। महादेवी वर्मा के काव्य संग्रह 'नीरजा' की पंक्तियां प्रस्तुत हैं-

विरह का जलजात, जीवन, विरह का जलजात।
वेदना मे जन्म, करूणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात।
विरह का जलजात"।[12]

बुद्ध के समान महादेवी भी वेदना, पीड़ा, दु:ख व करूणा के माध्यम से विश्व कल्याण की कामना करती हैं। दु:ख के प्रति इतनी आसक्ति है कि - वे बिना दु:ख के लक्ष्य प्राप्ति सम्भव ही नहीं मानती । दु:ख भाव की अतिशय प्रबलता के कारण वे अपने आराध्य देव को ही दु:ख का प्रतिरूप मान बैठती हैं।

इस प्रकार के उदात्त दु:ख, असीम वेदना, पवित्र पीड़ा और सुखमय स्वानुभूति के माध्यम से मनुष्य अवश्य ही अपने जीवन में सुख, शान्ति और सन्तुष्टि की प्राप्ति कर सकता है। किसी अन्य के दु:ख में सम्मिलित होकर, उनकी पीड़ा में खोकर उनकी वेदना की अनुभूति करके संवेदनात्मक स्तर पर उससे स्वयं को निमग्न कर देना ही बौद्ध दर्शन का सिद्धान्त है। सर्व दु:ख में भी 'आत्मिक सुख व शान्ति' की प्राप्ति कर विश्वकल्याण विश्व शान्ति व समष्टि सुख प्रदान करना ही भगवान बुद्ध का संदेश रहा है। इसी प्रकार महादेवी जी के व्यक्तित्व में भी अपने दु:ख बोध के कारण उनके अन्तर्मन में करूणा का सागर उमड़ता है। बादलो की भांति वर्षा कर, पुष्पों की भांति सुवास प्रसारित करके दीपक की भांति स्वयं जलकर भी संसार को प्रकाशमान करने जैसी विश्व कल्याण की

भावना से डूबती थीं। किसी अन्य के दु:ख व वेदना में स्वयं को लीन करना वेदनानुभूति के माध्यम से जुड़ना ही कवयित्री के जीवन की सफलता का परिचय है कवयित्री स्वयं कहती है-

दुख का युग हूँ या सुख का पल
करुणा का घन या मरु निर्जन
जीवन क्या है मिल कहाँ
सुधि भूली आज समूल।"*13*

ऐसी सुखमय पीड़ा में भला कौन बहना न चाहेगा। वेदना के सागर को आसमा से झरने वाली अमृत की धारा के समान अहसास करना, पीड़ा को शीतल व सुगन्धित चन्दन सा गुण प्रदान करना, तूफानों में भी प्रिय के आलिंगन में सुखमय छाया प्राप्त करना और संसार की असफलताएं, दु:ख, ग्लानि, निराशा समस्त दु:खकारी तत्व भी विजय सन्तुष्टि और शान्ति प्रदान करने लगे तो ऐसे आँसू, ऐसी पीड़ा, ऐसी वेदना संसार के उस सुख से भी अधिक सुखमय है जो क्षणिक मानव के जीवन में आता है और पल भर में लुप्त हो जाता है। क्योंकि महादेवी के सुख की अनुभूति असीम और आरम्भिक है इसलिए दु:ख में अपने प्राणों को गला कर अपने जीवन को समाप्त कर नव्य जीवन निर्माण का कारण बताते हुए कहती हैं –

गल जाता लघु बीज असंख्यक
नश्वर बीज बनाने को।"*14*

अतः स्पष्ट है कि भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों के समान महादेवी भी अपने प्राणों व अपने जीवन के समस्त सुख व वैभव को त्याग कर संसार के सुख व कल्याण की कामना करती हैं। कवयित्री महादेवी की दु:खवादी अभिव्यक्ति नितान्त मौलिक है। कवयित्री ने अपने व्यक्तित्व वेदना के माध्यम से लोक वेदना को मूर्तिमान करने का सफल प्रयत्न किया है। संसार में कवयित्री ने जो दु:ख के मोती चुने हैं, उनमें उनका काव्य अनुभूतिमय संवेदनात्मक, हृदयस्पर्शी एवं मधुर बन पड़ा है क्योंकि वे दुख का ही जीवन का सबसे सुन्दर काव्य मानती है।

कवयित्री ने अपने काव्य संग्रह 'यामा' में दु:ख के महत्व को उजागर करते हुए लिखा है - "दु :ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो संसार को एक सूत्र में बांधने की क्षमता रखता है, एक बूंद ऑसू भी जीवन को अधिक उर्वर बनाये बिना नही रहता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है पर दु:ख सबको बाँट कर। विश्व जीवन में अपने जीवन को विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस तरह मिला देना जैसे एक बूँद समुद्र में मिल जाती है सच्चे कवि की यही मोक्ष हैं।"*15*

महादेवी स्वयं स्वीकार करती हैं कि – "बचपन से ही महात्मा बुद्ध के प्रति भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दु:खात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। अवश्य ही इस दु:खवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा..।"*16*

कवयित्री रहस्यानुभूति की प्रत्यक्ष विवृत्ति करती हैं। हिन्दी साहित्य में जितने कवियों ने काव्य में विषाद व दु:ख भावना दिया, इनमें से महादेवी की रचनाओं में करूणा, वेदना और विषाद का व्यापक चित्रण मिलता है। इन्होंने अपनी कविता में विषाद भावना को मुख्य स्थान प्रदान किया। विषाद महादेवी के व्यक्तित्व में इतना घुलमिल गया है कि - वह विषादहीन जीवन की कल्पना मात्र भी नहीं कर पातीं। यही कारण है कि उन्होंने सम्पूर्ण जीवन एवं समस्त जगत की समस्त वेदना को ही अपने भीतर समाविष्ट कर लिया। महादेवी वेदना की पराकाष्ठा को मधुमय पीड़ा कहती है और अपने अराध्य को दु:ख के भावों में छिपा लेना चाहती है।

महादेवी ने अपने जीवन में दु:ख के महत्व को भली – भांति समझ लिया है। उनका सम्पूर्ण जीवन ही वेदना में निमग्न प्रतीत होता है। उन्होने स्वीकार किया कि दु:ख के माध्यम से न केवल अपने जीवन को वरन मानवता को भी सुखी तथा समृद्ध बनाया जा सकता है। यही लोकमंगल और लोककल्याण की भावना उनके काव्य को अनायास ही बौद्ध दर्शन से जोड़ देती

हैं। महादेवी के अनुसार वेदना दु:खमूलक नहीं है। वह प्रिय तथा मुक्ति का साधन है। इसीलिए उनके काव्य में वेदना को प्रधान स्थान प्राप्त है और उनका काव्य दु:खवादी होते हुए भी मधुर संगीत के समान गुंजन उत्तपन्न करता है तथा परम आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है। महादेवी ने अपने दु:खमय जीवन को ही पवित्र और शान्तिपूर्ण बनाकर मन को मंदिर मान लिया है-

''सूने मानस मंदिर में
सपनों की मुग्ध हसी में
आशा के आहवाहन में
बोते की चित्रपटी में।"[17]

महादेवी की वेदनानुभूति मे वह स्वयं आराधिका हैं और उनके इष्टदेव चिर सुन्दर और असीम हैं। अतः उनका दु:ख भौतिक न होकर आत्मिक प्रतीत होता है। कवयित्री अपने व्यक्तिगत जीवन की वेदना को उदात्त बनाना चाहती है। इसी उद्देश्य से उन्होने अपने जीवन के समस्त दु:ख वेदना को अपने काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि कवयित्री की विरहानुभूति की तीव्र अभिव्यक्ति का कारण एक यह भी है कि कवयित्री ने अपनी व्यक्तिगत वेदना को उदात्त बनाने का सफल प्रयास किया।

महादेवी वर्मा ने विश्व वेदना में अपनी वेदना को गला कर देखा है, क्योंकि उनका विश्वास है कि उसी के द्वारा कवि अपना कविकर्म पूर्ण करने की क्षमता रखता है। विश्व जीवन मे अपने जीवन की विश्व वेदना मे अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।

कवयित्री का काव्य विश्व के कण कण में करूणा की पावन लहर उमेड़ती है। इनकी करूणा व वेदना जीवन में स्फूर्ति एवं प्रेरणा का संचारण करती है। यह जीवन के संघर्षों से पार होने की शक्ति प्रदान करती है। ऐसी उज्जवल, पवित्र और उदात्त भावना उत्पन्न करती है जिसमें दु:ख भी पवित्र होकर विषाद के तम से आनन्दानुभूति के प्रकार को प्राप्त करता है। व्यष्टि की भावना से निकल कर समष्टिगत हो जाता है। करूणा एवं वेदना को महत्व प्रदान करते हुए वे स्वयं कहती हैं कि करूणा हमारे जीवन और काव्य में बहुत गहरा सम्बन्ध रखती है। वैदिक काल में ही एक और आनन्द उल्लास की उपासना होती थी और दूसरी ओर इस प्रवृत्ति के विरूद्ध एक करूणा भाव भी पाया जाता था। एक ओर पशुबलि प्रचलित थी और दूसरी ओर माहिस्यात् सर्वभूतानि का प्रचार हो रहा था। इस प्रवृत्ति ने आगे विकास पाकर जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों की रूपरेखा दी । बुद्ध द्वारा स्थापित संसार का सबसे बड़ा करूणा का धर्म भी संसार को नही छोड़ता । परमतत्व की व्यापकता और इष्ट की पूर्णता के साथ अपनी सीमा और अपूर्णता की अनुभूति ही निर्गुण, सगुणवादियों के विरह की तीव्रता का कारण है।

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वेदनानुभूति महादेवी के काव्य का प्रधान जीवन - दर्शन है। जगत और जीवन की निस्सरता, करूणा, दुख, वेदना, निराशा से व्यथित होकर उन्होंने दु:खवाद का सृजन किया। उनपर महात्मा बुद्ध के 'सर्वदुखस'' की भावना का प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टव्य होता है। निःसन्देह कहा जा सकता है कि महादेवी का जीवन - दर्शन और साहित्य सृजन विरह वेदना ओर प्रणय भावना की नीति से आप्लावित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. नीहार, महादेवी वर्मा, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1955 , पृष्ठ 68
2. वही, पृष्ठ 38
3. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 2011, पृष्ठ 67
4. यामा, महादेवी वर्मा, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 2008, पृष्ठ 11
5. आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ, नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 196 पृष्ठ 5

6.नीरजा, महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृष्ठ 19
7.बौद्ध दर्शन, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 1944 पृष्ठ 5-7
8.वही, पृष्ठ 105-107
9.वही, पृष्ठ 23
10. वही, पृष्ठ 19
11. वही, पृष्ठ 08
12. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 18
13. यामा, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 108
14. वही, पृष्ठ 150
15. वही, पृष्ठ 12
16. वही, पृष्ठ 12
17. नीहार, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 71

सदस्य एवं सलाहकार
नवल फ़ाउंडेशन (नवल रिसर्च इंस्टीट्यूट)

7

जन संवेदना के कवि : मुक्तिबोध

डॉ. कमला चौधरी

अवरोधों, विसंगतियों, संघर्षों का नाम मुक्तिबोध है। वे समय के हस्ताक्षर थे, हस्ताक्षर क्या सशक्त हस्ताक्षर थे, पहचान थे, अपने युग की परन्तु उनका संघर्ष जिस प्रकार काव्य में आक्रोश बन प्रकट हुआ, जितनी स्वाभाविकता प्राप्त कर सका वह अपने आप में एक उपलब्धि है। मुक्तिबोध के शब्दों में "जिन्दगी बड़ी तल्ख है, लेकिन मानव की मिठास का क्या कहना। जी होता है सारी जिन्दगी एक घूँट में पीली जाए।" ऐसी तल्ख जिन्दगी से उपजे कवि और उनकी कविता का दिग्दर्शन कराने का प्रयास इस आलेख में है।

मुक्तिबोध एक विचारक कवि ही नहीं हैं, एक विचारवान समीक्षक भी हैं। उनकी 'एक साहित्यिक की डायरी' और उनकी आलोचनात्मक पुस्तक 'कामायनी : एक पुनर्विचार' के प्रमाण से यह स्पष्ट हो जाता है। मुक्तिबोध की कविता का विषय मनुष्य है- शोषित-पीड़ित मनुष्य जो सदियों से दासता, दमन-चक्र और अभावों का शिकार है। मनुष्यों को मनुष्य रूप में देखना, मानवता की प्रतिष्ठा करना, मानव-धर्म की स्थापना करना, यही मुक्तिबोध की कविता का वास्तविक और एक मात्र सरोकार है। उनकी एक कविता का अंश उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है-

"सोच रहा क्यों मानव के
इस-तुलसी-वन में आग लगी
क्यों मारीं फिरती है।
मन की यह गहरी सज्जनता
दुःख के कीड़ों में खाली क्यों
ये जुही पत्तियाँ जीवन की
निर्माल्य हुए क्यों फूल युवक-युवती जन के
क्यों मानव-सुलभ सहज आकांक्षाओं के तरू
यो ठूंठ हुए वृन्दावन के
मानव-आदर्शों के गुम्बद में आज यहाँ
उलटे-लटके चिमगादड़ पापी भावों के"[1]

मुक्तिबोध की कविताएँ फणिधर हैं। उनका उद्देश्य विषाक्त व्यवस्था से संघर्ष करना है। उनकी कविता में जीवन-सत्य की खोज में अनवरत् यात्रा का रूपक बराबर मिलता है। इस जीवन-सत्य की खोज में उन्होंने आधुनिक समाज तथा जीवन-व्यवस्था की क्षयग्रस्त एवं रूग्ण अवस्था का भी चित्रण किया है। मुक्तिबोध की कविता का विषय व्यापक जीवन है। इसी से वे संवेदनाएँ ग्रहण करते हैं और अनन्तर जीवन को ही समर्पित कर देते हैं। प्रस्तुत उदाहरण न केवल उनके व्यापक जीवन-अनुभव का प्रमाण है, बल्कि उनकी कविता की प्रक्रिया का भी एक जीवन्त विश्लेषण है-

"उपमाएँ उद्घटितवक्षा मृदुस्नेहमुखी
एक-एक देखती मुझको प्रियतर मुसकाती
मूल्यांकन करते एक दूसरे का
हम एक-दूसरे को सँवारते जाते हैं।
वे जगत्-समीक्षा करते हैं।
मेरे प्रतीक आगामी के रूपक सपने फैलाते हैं।
दरवाजे दुनिया के सारे खुल जाते हैं।
प्यार के साँवले किस्सों की उदास गलियाँ
गम्भीर करूण मुस्कराहट में
अपना उर का सब भेद खोलती हैं।
अनजाने हाथ मित्रता के
मेरे हाथों में पहुँच ऊष्मा करते हैं
मैं अपनो से घिर उठता हूँ
मैं विचरण करता-सा हूँ एक फैण्टेसी में
यह निश्चित है कि फैण्टेसी कल वास्तव होगी।"[2]

मुक्तिबोध मनुष्यमात्र की महाकाव्यात्मक पीड़ा से परिचित ही नहीं अपितु उसके प्रति समर्पित भी हैं। यही समर्पण उनकी एक-मात्र प्रतिबद्धता है। उन्होंने जीवन को उसके नग्न अभाव में देखा है और उसका व्यक्तिगत अनुभव भी किया। उनकी कविताओं में उनके व्यक्तिगत जीवन की त्रासद अनुभूति भी व्यक्त हुई है-

"आज के अभाव के व कल के उपवास के
व परसों की मृत्यु के.....
दैन्य के, महा-अपमान के, व क्षोभपूर्ण
भयंकर चिन्ता के उस पागल यथार्थ का
दीखता पहाड़- स्याह![3]

उनके काव्य में यथार्थ के प्रति विशेष ललक विद्यमान है। उनका यह यथार्थ, मानव यथार्थ है जिसकी धूप-छाया से उनकी समूची कविता रँगी हुई है। इससे उनमें जो संवेदना उठती है, उसे पकड़ पाना उनके लिये कठिन हो जाता है-

"त्यों मन
भीतर के लेखों को छू लेता है
बेचैन भटकता है, बेकार ठिठकता है
पर, पकड़ नहीं पाता उसके अक्षर-स्वर"[4]

कवि शोषण से मानव-मुक्ति के लिए क्रान्ति को आवश्यक समझता है। निरन्तर देश की पीड़ाओं के मुक्ति के मार्ग का अनुसंधान करता रहता है। 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' में भी इस अनुभूति को सहज अभिव्यक्ति मिली है। इन भावनाओं से कवि में एक अन्तर्दृष्टि उत्पन्न होती है।

मुक्तिबोध के काव्य में जाज्वल्यमान लाल-लाल लपटों का प्रयोग प्रायः प्रत्येक कविता में क्रान्ति के प्रतीक रूप में अवश्य आ जाता है। 'अंधेरे में' कविता में इसके अनेक चित्र मिल जाते हैं। कवि जिन्दगी के अंधेरे कमरे में चक्कर काट रहा है। उसके सामने समूचे देश की दुरवस्था का चित्र उभरता है। कवि को ऐसा ज्ञात होता है कि उसे किसी ने अंधेरे में पकड़कर बंद कर दिया है और उसे मौत की सजा दी है। फिर भी जिन्दगी के बोझ को ढोता हुआ वह जिन्दा है। उसे आत्मग्लानि होती है-

"अब तक क्या किया
जीवन क्या जिया
बताओ तो किस-किस के लिए तुम दौड़ गए।
करूणा के दृश्यों से हाय!
मुख मोड़ गए बन गए पत्थर
बहुत-बहुत ज्यादा लिया
दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे जीवित रह गए तुम!!"[5]

अचानक उसे यह आभास होता है कि-

"कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ
वर्तमान समाज में चल नहीं सकता।
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता
स्वातन्त्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को
जन को!!"[6]

मुक्तिबोध की कविता सम्पूर्ण मानव-समाज को शोषण से मुक्ति दिलाने का एक प्रयास है। देश की दुर्व्यवस्था से वे निरन्तर दुःखी रहे। 'डूबता चाँद कब डूबेगा' के माध्यम से उन्होंने एक पतनशील, अधिनायकवादी संस्कृति की समष्टि का संकेत किया है। एक प्रश्न उनके दिमाग में कब से आता है कि-

'क्या उत्पीड़कों के वर्ग से होगी न मेरी मुक्ति ?'[7]

'चकमक की चिनगारियों' में इस समस्या का समाधान समूचे देश के सन्दर्भ में ढूँढने का प्रयत्न किया गया है-

"मेरे सामने है प्रश्न
क्या होगा कहाँ किस भाँति
मेरे देश-भारत में
पुरानी हाय में से
किस तरह से आग भभकेगी।
उड़ेगी किस तरह भक से
हमारे वक्ष पर लेटी हुई
विराल चट्टानें
वह इस पूरी क्रिया में से। उभरकर भव्य होंगे, कौन
मानव गुण"[8]

मुक्तिबोध अनुभूत सत्य को वाणी देने की सार्थक कोशिश करते सर्वत्र दिखायी पड़ते हैं। पीड़ितों की आवाज कहीं दब न जाय, उनकी आवाज चारों ओर गूँजे, ताकि उन्हें पीड़ा से त्राण मिले, इसलिए मुक्तिबोध का कवि बार-बार यह कहता है कि "मुझे पुकारती हुई पुकार खो गयी कहीं"[9]

यह पुकार अभिव्यक्ति की पुकार है, कविता की पुकार है, आत्मा-अधीरा की पुकार है, क्योंकि कवि को सर्वत्र 'अमूर्त सत्य की क्षुधित अपूर्ण यत्न की तृषित अपूर्व जीवनानुभूति-प्राणमूर्ति की समस्त भग्नता दिखलाई पड़ती है। मुक्तिबोध सक्रिय पीड़ा के नैरन्तर्य में जीते, सोचते और कभी न खत्म होने वाली अभिव्यक्ति को आत्म सम्भव बनाते हैं।

उनकी यह पीड़ा निजी होकर भी व्यक्तिगत नहीं है, सामाजिक है। उनकी सामाजिक पीड़ा भी सिर्फ सामाजिक नहीं है उसके घेरे में समग्र देश अपने ऐतिहासिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भ सहित आ जाता है। यह भारतीय पीड़ा चरम सहानुभूति में रूपान्तरित होकर विश्व-मानवता के लिए संघर्षमयी सक्रियता में दीप्त हो उठती है। मुक्तिबोध का उद्देश्य साफ है-

"मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव सुखी, सुन्दर व शोषण-मुक्त
कब होंगे ?"[10]

मुक्तिबोध पीड़ा की जड़ तक पहुँच जाने के लिए बीहड़ प्रयत्न में मनोगुफाओं की अंधेरी कन्दराओं तक चले जाते हैं और पुरागाथाओं, मिथकों और अपने अवचेतन में छिपे प्रेतों और सपनों के दवाब तक को झेलकर, भभके की तरह उन्हें ऊपर ले आकर उनका विश्लेषण, उनकी चीर-फाड़ करते हैं। शमशेर के अनुसार 'मुक्तिबोध युग के उस चेहरे की तलाश करते है जो आज के इतिहास के मलबे के नीचे दब गया है, मगर मर नहीं गया है।' श्रीकांत वर्मा का यह सोचना बिल्कुल सटीक है- मुक्तिबोध की सार्थकता इसमें है कि उन्होंने इतिहास के प्रश्नों को केवल इतिहास के प्रश्न कहकर नहीं छोड़ दिया, बल्कि उन्हें कविता के प्रश्नों में बदल दिया।

मुक्तिबोध समूह की पीड़ा से मुक्ति के समर्थक हैं-

"याद रखो! कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती
यदि वह है तो सबके साथ है"

नयी कविता में मुक्तिबोध कदाचित् ऐसे कवि हैं जिन्होंने 'जिन्दगी के जलते जंगल' की ज्वाला देखी, जिनकी अन्तःचेतना में 'बिम्ब फेंकती नदियाँ' शत-शत धाराओं में प्रवाहित होती रहीं, जिनके मन में 'अर्थो की वेदना घिरती' रही और जिन्होने-

"शून्यों से घिरी हुई पीड़ा ही सत्य है
शेष सब अवास्तव अयथार्थ मिथ्या है भ्रम है
सत्य केवल एक है जो कि
दुःखों का क्रम है।"[11]

का गहन साक्षात्कार किया।

मुक्तिबोध ने अपनी बहु आयामिनी पीड़ा को जो फैंटेसी प्रदान की, उसके प्रति उनकी आस्था इतनी बलवती है कि उनका यह उद्घोष अविस्मरणीय है-

"यह निश्चित है कि फैंटेसी कल वास्तव होगी।
खोजता हूँ पठार-पहाड़-समुन्दर
जहाँ मिल सके मुझे
मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-सम्भव"[12]

उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि रचनाकार का आत्मसंघर्ष बड़ा घुमावदार होता है। इसका कारण यह है कि 'मुक्तिबोध' का साहित्य मूल रूप से ध्वंस का साहित्य है। वह सीधे-सीधे समाज को बदलने का कार्य नहीं करता, पर समाज की विषम स्थितियों में पड़े हुए व्यक्ति को, उसके संकट, बेगानी और बिलगाव का बोध अवश्य करता है। वे लिखते है- "इस विशाल व्यक्तिवाद की विशालतम ट्रेजेडी को शब्दबद्ध कर सकूँ, तो मेरा जीवन-कार्य समाप्त हो जाए। क्योंकि न मैं सिर्फ अपनी राह खोजता हूँ बल्कि वह भी मुझे

खोजती है।''[13]

आधुनिक सभ्यता के अपवाद, कृत्रिम आडम्बर ने संस्कृति को नष्ट कर दिया। उसकी मूल संवेदना अदृश्य हो गई है, इससे मनुष्य का व्यक्तिवाद बढ़ा है और उसमें शोषण परक तत्परता का समावेश हुआ है-

''कितनी ही गर्वमयी
सभ्यता-संस्कृतियाँ
डूब गयी.....
शोषण की अतिमात्रा
स्वार्थों की सुख-यात्रा
मर गई सभ्यता''[14]

मुक्तिबोध की कविताओं का मूल स्वर मानववादी है। वे सही माने में मनुष्यता के मसीहा हैं। उनकी मनुष्य-मात्र पर आस्था है-

''मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मिता में विमल सदा नीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य-पीड़ा है,
पल भर मैं सब में से गुजरना चाहता हूँ,
प्रत्येक के उर में से तिर आना चाहता हूँ,
इस तरह खुद ही को दिये-दिये फिरता हूँ,
अजीब है जिन्दगी!!''[15]

मुक्तिबोध ने जीवन की चुनौतियों का सामना किया है, इसीलिए उनकी कविताओं का मूल स्रोत चुनौती से भरा हुआ है। 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' में इस तरह के अनेक चित्र व्यंजित हुए हैं। 'मुक्तिबोध' ने जीवन के अन्तः में प्रवेश करके मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि से अमूल्य अनुभवों को एकत्रित किया है। इस संघर्ष में उन्हें सुख की तुलना में दुख का साक्षात्कार ही अधिक करना पड़ा है।

मुक्तिबोध ने शोषित मानव को समानधर्मा माना है। उसका अनेक बार आह्वान किया है। 'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन' कविता में उन्होंने लिखा है-

''मेरे साथ
खण्डहर में दबी हुई अन्य धुकधुकियों
सोचो तो
कि स्पन्द अब.....
पीड़ा-भर उत्तरदायित्व-भार हो चला,
कोशिश करो, कोशिश करो
जीने की
जमीन में गड़कर भी।''[16]

आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण हिन्दी कविता के क्षेत्र में मुक्तिबोध विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। कबीर, तुलसी और निराला के समानान्तर मुक्तिबोध की कविता में संघर्ष की दीप्ति है। मुक्तिबोध ने अपने युग की सम्पूर्ण विभीषिका एवं विसंगतियों को नजदीक से देखा, उन्हें झेला और जमाने का सारा विष पचाकर, उन्मुक्त भाव से भावामृत उलीचा, दलित द्राक्षा की तरह अपने को निचोड़ कर अपने अन्तस् का सारा रस उँड़ेल दिया।

नयी कविता में मुक्तिबोध अकेले ऐसे कवि है जिन्होंने 'जिन्दगी के जलते जंगल' की ज्वाला देखी, जिसकी अन्तश्चेतना में 'बिम्ब फेंकती वेदना-नदियाँ, शत-शत धाराओं में प्रवाहित होती रहीं। वे अक्षर की दुनिया की स्याह लहरों में नहाती चमकीली मूर्तियों के शिल्पी के रूप में बराबर याद किए जाएगें अन्वेषक के रूप में स्मरण किए जाएगें।

सन्दर्भ सूची:-

1. 'मेरे सहचर मित्र' - कविता, मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं. 2001, पृष्ठ 45
2. एक अन्तःकथा – कविता, मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृष्ठ 76

3. चाँद का मुँह टेढ़ा, (कविता संग्रह), मुक्तिबोध, पृष्ठ 14
4. वही, पृष्ठ 225
5. वही, पृष्ठ 268
6. वही, पृष्ठ 210
7. वही, पृष्ठ 110
8. कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1968, पृष्ठ 247
9. समकालीन काव्य, सुरेशचन्द्र पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 78
10. वही, पृष्ठ 77
11. वही, पृष्ठ 87
12. 'अँधेरे में' गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृष्ठ 34
13. मुक्तिबोध: एक साहित्यिक इकाई, जगदीश शर्मा, पृष्ठ 6
14. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृष्ठ 197-198
15. वही, पृष्ठ 91
16. वही, पृष्ठ 83-84

सहायक आचार्य
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राज.)

8

Semantic analysis of the circumstances of the course of action

Zamaleeva Eleonora Ilsurovna

Annotation

Abstract: The article is devoted to the study of the semantic analysis of the circumstances of the way of action, types of circumstances of the way of action, which determine the quality of the action, the degree of manifestation of the action or feature, indicating the state of the action, as well as the quality of the action and the way of performing the action.

According to the semantic features of the circumstances of the course of action, it is worth noting that it is always an adverb in a sentence. For example, the circumstances of time, place, degree, or mode of action.

In the Pashto language, a circumstance is divided according to semantics into the following ways of expression: circumstances that determine the quality of an action, the degree of manifestation of an action or a sign, circumstances that indicate the state of the action, circumstances of an action that indicate the quality of the performance of an action, as well as circumstances of an action that indicate a way to perform an action.

Key words: semantics, circumstance of the mode of action, quality, state, degree of manifestation of action, method of manifestation of action.

Content

I. Circumstances that determine the quality of the action, the degree of manifestation of the action or sign

II. Circumstances that indicate the status of an action

III. Circumstances of the course of action that indicate the quality of the performance of the action

IV. Circumstances of a course of action that indicate a way of performing an action

V. Conclusions

Vi. List of used literature.

SEMANTIC ANALYSIS OF THE CIRCUMSTANCES OF THE OPERATION

I. Circumstances that determine the quality of the action, the degree of manifestation of the action or sign.

Just as the circumstances of the course of action change, so does its semantics.

The circumstances of the course of action have different meanings. This refers to such meanings as action, situation, speed, state, duration, quality, suddenness, analogy.

According to semantic and syntactic peculiarities

F. Ubaeva in the Uzbek language the following types are distinguished: mood, quality, image, method.

M. Muminova semantically divides the circumstance of the mode of action in the Uzbek language into two groups:

1. The circumstance of the mode of action, which reflects the quality of the action, the state, that is, only the specific internal features of the action.

2. The circumstance of the course of action, which indicates the way in which the action is carried out.

However, the author emphasizes that the semantic case groups do not have a mutually reinforced border, that one meaning can complement another meaning. So it was in the examples in the Pashto language. As a result of the analysis, it was noted that some stylistic cases can have several meanings at the same time.

For example: the "slow" circumstance of the

course of action mainly expresses the tone of speech verbs, as well as the speed of action and the level

Mode of action, expressed by the word "slow" in speed and tone of speech

When it comes to expressing the tone of speech, it usually comes with the verb "speak." The speed of the "fast" action is also related to the state of time, that is, it is executed immediately.

There are two meanings of the word "hard, barely": to perform an action by force means to do something reluctantly. In Uzbek language textbooks, the level and quality of movement, as well as cases indicating the method, are grouped into a semantic group - style. M. Muminova considers such a union to be correct, because such a division is not essential. In fact, if you look at the words “I came on foot,” “I fell on my back,” “I laughed,” the word “pedestrian” refers to the way in which the action was performed, the word “back” refers to the way of doing the action, and the word “ laughs ”refers to the way an action is performed. The author of the article answers these words "how?" and then divided into smaller groups according to their meanings.

As a result of the analysis of examples, the circumstances of the course of action in the Pashto language are semantically divided into the following groups:

1) State of affairs, which indicates the state of the execution of an action

2) A state of mind that represents the quality of performing an action

3) The state of the style, which indicates how the action will be performed

II.Circumstances that indicate the status of the execution of an action

Status category words.

Words of the category of state are considered by some researchers as words of an independent part of speech, by others as a special group of adverbs. Words of the category of state express the state (mental, mental, physical, etc.) of a person, the environment (quiet, fun, sad, scary, damp, stuffy, etc.) or an assessment of actions (these are the so-called modal words such as can , it is necessary, it is impossible, it is necessary, etc.). Words of the category of state, like impersonal verbs, are (often together with the indefinite form of the verb) predicates in impersonal sentences (or are part of the predicate). For example: 1. The yard is deserted and quiet. 2. I am sad because you are having fun. 3. We must hit the road.

Style cases denoting the state of execution of an action indicate the state of execution of an action or sign, the property of the state is expressed in a verb. Any action is performed by the subject, and the style cases that indicate the state of execution of the action basically represent the execution of the action depending on the state of the subject. This is expressed in stylistic cases in which an action or situation is performed in what state, in what mood.

1) In what state to perform the action

Among the cases where an action must be performed, there are cases where an action must be performed externally. In this case, style cases play the main role, which means that the action is performed manually:

"He came out of the store with a broom in his hand."

"I ran after him with a stick in my hand."

In addition to the joints in which the word "hand" is present, the style cases expressed by the following joints also indicate the state in which the action is performed:

“He was sitting on a bark board, throwing a melody over his shoulder”;

"In the mornings he went to kindergarten and then to school with two children, one holding each other."

2) Stylish covers that indicate the mood in which the action is performed

It is known that various changes in nature and society, different human relationships in life inevitably affect the character of a person, his

psyche. It is this external influence that prepares the ground for the emergence of an unusual state in the human psyche. The human psyche is very diverse, it is a set of different states, such as joy, anger, sadness, indifference. It is these qualities that characterize the state of mind, which depends on the style of speech and indicates the state of action.

Such cases of mood indicate the mood in which the action or situation is performed, the mental state of the subject when performing this action.

Behavioral situations that indicate the mood in which an action or situation is being performed indicates the subject's joys or sorrows while performing the action. These two types of sentiments can be expressed in different ways.

a) Performing an action in a good mood is characterized by the following cases:

- "happy" - خوشحاله
- "very happy" - - "ډېر خوشحاله" -
- "jokingly" - "په ټوکه"
- "with a smile" - (... with a smile) when the action is performed with a smile. - "په خندا سره"

Cases of the circumstances of the course of action expressed by such combinations can indicate cunning in performing the action, as well as signal that the action is being performed with a smile.

b) Performing an action in a bad mood can be expressed in the following ways:

- "nervous" - - "اعصاب" -
- "with anger" - - "په قهر سره" -
- "crying with tears in his eyes" - - " د هغه په اوښکو ژاړم" -
- "groan", "with sorrow" - "غم سره" ، "ژړا" -

3) Cases of the circumstances of the course of action that indicate the mental state in which the action is performed

The states of circumstance of the course of action indicate that the action is performed in the following mental states:

- "with hope" - - "امید سره" -
- "without fear" - "له ویرې پرته" -

It is also possible to understand the mental state of a subject through a person's appearance. The subject's excitement when performing an action, expressed in a combination of "shaking hands", the subject's sadness when performing an action, expressed in a combination of "tears in his eyes", the subject's sadness when performing an action. The satisfaction of the subject with the performance of the action is expressed to a greater extent by the expression of the subject and the expression of the action in anger in the expression of the combination

III. Circumstances of the course of action that indicate the quality of the performance of the action

Style cases that indicate the quality of the performance of an action have the following meanings:

- perform the action quietly په ټيټ غږ کې ، په غوسه کې ، _"in a quiet voice, in a whisper", "silent" "غلی," without noise "؛ له شور پرته;
- to perform actions in secret: "secretly" "پټ" -
- reluctantly to perform actions: "hardly" په کلکه, "with difficulty" "له ستونزو سره;
- sudden execution of an action: "suddenly" ناڅاپه "" involuntarily "" په خپله خوښه "," without thinking "بې له سوچه

1) Circumstances of the course of action, which indicate the speed at which the action or situation is carried out

This group of styles indicates that the action is performed quickly, slowly, hastily, or gradually as the action takes place.

1) Types of actions that indicate ‘‘fast’’ execution of the action may include: ژرژر, fast وروورو, slow په بېړه hastily

In this case, we see that the action is performed quickly, as well as in a state related to time, that is, immediately, For example:

In addition to the aforementioned cases, the circumstances of the course of action expressed by phrasal units such as "like lightning" "د برق په ځیر", "fast" "также گرند" also indicate the speed of action.

2) "Slow" action of action is

3) "Hasty" execution of an action is

characterized by such cases as

4) Circumstances of a course of action that indicate the speed of an action or situation can also mean gradualness of action: "in order" "منظم" ، "gradually" په تدریج سره, "sequentially" په دوامداره توګه, "in order" منظم, " step by step" ګام پر ګام

IV. Circumstances of the course of action that indicate the way in which the action is carried out

1) Style cases that represent the execution method of the action-state

Style cases, which indicate how an action is performed, indicate how, how, how an action is performed. How does this happen? will answer questions like. In the same time:

-repeat: "again, again";

-constant execution of actions:

perform the action alone "one", "one";

2) Circumstances of the course of action, which describe the sign of the action-state

Instances of style, expressed in figurative words, describe a sign of action.

Descriptive words are semantically divided into two main groups

V. Conclusions:

From the carried out semantic analysis of the circumstances of the mode of action and its relation to the verb, the following conclusions can be drawn:

The circumstances of the course of action were semantically divided into 3 groups. But the results of the analysis showed that the semantic groups of the mode of action do not have a strict border with each other, one mode of action can mean several meanings.

The system of meanings of case styles enters into a syntactic connection with the verb and represents various signs of an action or state expressed in a verb. When style combinations are combined with verbs, it has been found that semantic groups, which mainly represent states of action, as well as the quality and performance of verbal verbs, are used more frequently.

Our research has shown that the cases of the style of the circumstance of the mode of action in the Pashto language have not yet been fully studied, and so far only a part of them has been considered in the sources. In contrast to the work done to date on the case of the circumstance of the mode of action, the case of the circumstance of the mode of action has been considered separately in terms of structure and semantics, and attempts have been made to shed more light on their expression. Based on these analyzes, the following conclusions were drawn:

1) In the course of the study, 10 structural types of circumstances of the mode of action in the Pashto language were identified.

2) Expression of a sign according to its function means that adjectives have a similar form. If an adjective means an object, form means action. But in some cases, adjectives can precede abbreviation and also mean action. But not all primitive qualities can mean action.

3) The circumstances of the course of action are characterized by adjectives of the present and past tense from the indefinite forms of the verb. Adjectives formed from a modern adjective only by adding the suffix -a can come in style form. The main part of the modern adjective expressing the state of the style consists of adjectives composed of compound verbs. This is because, although an adjective made up of simple verbs has both an adjective and an adverbial meaning, an adjective made up of compound verbs acquires mainly an adverb. As a result of the analysis of the collected materials, it was found that only past tense adjectives consisting of complex verbs express the state of style. But their emergence as a state of style is not productive.

4) Words formed by the affixation method differ from stylistic cases represented by word models formed by prefixes and suffixes. The suffix method is different from the prefix method in constructing a form.

5) The circumstance of the mode of action in the Pashto language is mainly characterized by

repetitive copulators. The basis of repetition is noun, adjective, form, number, verb forms and figurative words.

6) Cases of the circumstances of the mode of action are semantically subdivided into the following semantic groups: 1) the state of the action; the circumstance of the course of action, 2) indicating the quality of the performance of the action, and 3) the method of performing the action. However, these split groups do not have a solid border. Some circumstances of the course of action can mean more than one thing. According to the semantic characteristics, it can be noted that an adverb in a sentence is usually a circumstance, and adverbial adverbs indicate external signs, that is, various conditions, circumstances of an action under which a process occurs or a feature is realized. It can be noted that adverbs can be part of the nominal predicate, and determine other parts of speech, for example, an adjective, a verb. By meaning, adverbs can be divided into several categories. These are: adverbs of place, adverbs of time, adverbs of measure and degree, adverbs.

VI. List of used literature:

1. Adzhimambetova G.Sh. Lexico-semantic classification of adverbs in the Crimean Tatar language // Questions of spiritual culture - Philological sciences - 2011.-65-68
2. Boyle A.D Descriptive Grammar of Pashto and its Dialects- USA, 2014. P.500
3. Glushchenko OA Adverbs of the mode of action in the classification and comparative aspects Dis. for a job. uch.step. Candidate of Philological Sciences - Petropavlovsk-Kamchatsky., 2006.-P.226
4. Gulidova E.N. Grammar of Russian dialects: linguodidactic aspect (based on work in a French-speaking audience) .Dis. for a job. uch.step. Candidate of Pedagogical Sciences - M., 2016. - P.277
5. Grunberg A.L. Essay on the grammar of the Afghan language (pashto) - Leningrad, 1987.- p. 237 p. 196
6. Ivshina T.P. The rhetorical potential of an adverb in a publicistic text // Bulletin of the Leningrad State University. A.S. Pushkin.-2010.-№ 5 C.1-
7. Lebedev K.A. Pashto grammar - M., 1970- p. 360, p. 292
8. Monraev M.U. "Adverbs in the modern Kalmyk language - Kalmyk ASSR: Elista, 1980 - p. 137
9. Rishtin S. Pashto grammar, پښتوګرامرپوهاندصديقالله ربښتين ژبارنسيدمحيالدين هاشمي يونيورسټيبکايجنسي ۱۱۹۴ م هش ۱۳۷۲ p. 491
10. D.S. Saiidyrakhimova, D.M. Zhakypova, Adverb and its interpretation in tajik linguistics Adverb and its interpretation in Tajik linguistics // International Scientific Journal Theoretical and Applied Science.USA. 2018-No.05 (61) .P.53-55
11. D.S. Saiidyrakhimova, D.M. Zhakypova, Adverb and its interpretation in tajik linguistics Adverb and its interpretation in Tajik linguistics // International Scientific Journal Theoretical and Applied Science.USA. 2018-No.05 (61) .P.53-55
12. Penzl H, Sloan I. "A Grammar of Pashto: A Descriptive Study of the Dialect of Kandahar, Afghanistan" - Ishi Press, USA, 2009 P.210
13. Arends A. Short syntax of modern Persian literary language. - M-L .: Iz-in ANSSSR, 1941.
14. Akhmanova O, G.B. Mikaelyan. Modern syntactic theories. - M .: Publishing house of Moscow State University, 1963. - 155 p.
15. Akhmanova O.S. To the question of the difference between complex words and phraseological units (based on the material of English and Swedish) // Proceedings of the Institute of Linguistics of the Academy of Sciences of the USSR, Vol. IV. - M .: Ed. Academy of Sciences of the USSR, 1954. - B. 53-73.

16. Akhmanova O.S. Dictionary of linguistic terms. - M .: Soviet encyclopedia, 1966 .-- 608 b.
17. Hajiyeva N., Koklyanova A. Speech verbs in the Turkic languages // Historical development of the vocabulary of the Turkic languages. - M., 1961 .-- 323-460 p.
18. Goleva G.S. Farsi-Russian phraseological dictionary. - M .: Graal, 2000 .-- 626 b.
19. Gruzdeva S.I. Secondary members of the proposal at the present stage of their study // Russian language at school. - 1966. - No. 2. - p.95.
20. Zhirkov L.I. Persian language. (Elementary grammar). - M., 2009 .-- 208 p.
21. Iskhakova F.s. The main ways of word formation of Persian adjectives // Indian and Iranian philology (vocabulary issues). - M. 1971. B. 3-14.
22. Kogan G.A. On the features of modeling idioms-adverbs in the Persian language // Studies in Iranian philology. - M., 2001, third edition. S. 25-37.
23. Kuchkartaev IK Valence analysis of speech verbs in the Uzbek language. - Tashkent: Fan, 1977.
24. Meshchaninov I.I. Sentence members and parts of speech. - M.-L., 1945.
25. Nikitin V.M. Morphology of the modern Russian language. Verb and adverb. - Ryazan, 1961 .-- 123 p.
26. Nikitin V.M. Circumstance as a minor member of a sentence in Russian as opposed to an addition. Scholarly notes. Volume XXVII. - Ryazan, 1961 .-- 141 p.
27. Nikitin V.M. The categories of circumstances in the modern Russian language. Special course manual. - Ryazan, 1973 .-- 119 p.
28. Oranskiy I.M. Introduction to Iranian Philology. Ed. 2nd, supplemented. - M .: Nauka, 1988 .-- 390 p.
29. Peisikov L.S. Questions of the syntax of the Persian language. - M .: Ed. IMO, 1959 .-- 411 b.
30. Peisikov L.S. Essays on word formation of the Persian language. - M .: Ed. Moscow State University, 1973 .-- 199 b.
31. Peisikov L.S. Lexicology of the modern Persian language. - M .: Ed. Moscow State University, 1975 .-- 206 b.
32. Peshkovsky A.M. Russian syntax in scientific coverage. - M: Uchpedgiz; Questions about "questions". Selected Works. - M: Uchpedgiz, 1959.
33. Potebnya A.A. From notes on Russian grammar. - M., 1958.T.1-2.
34. Rastorgueva V.S. A brief outline of the grammar of the Persian language // Miller B.V. Persian-Russian dictionary. Ed. 2nd, rev. and add. - M .: Gosizdat foreign. and national dictionaries, - 1953 .-- B. 613-668.
35. Rubinchik Yu.A. Fundamentals of the phraseology of the Persian language. - M .: Nauka, 1981 .-- 276 p.
36. Rubinchik Yu.A. A grammatical sketch of the modern Persian language. Appendix to the Persian-Russian Dictionary in 2 volumes, ed. Yu.A. Rubinchik. Ed. 3rd, stereotypical. - M .: Russian language, 1985 .-- B. 791-844.
37. Rubinchik Yu.A. A grammar of the modern Persian literary language. - M .: Vostochnaya literatura RAN, 2001 .-- 600 p.
38. Rudnev A.G. Secondary members of the proposal // Scientific notes. T.122. - L., 1956 .-- 43 b.
39. Russian grammar. II volume. Syntax. "Science", -M. 1980.
40. Safayev A.S. The main members of a simple sentence in modern Uzbek. - Tashkent: Publishing house of SAGU, 1958 .-- 80 p.41. Safayev AS Research on the syntax of the Uzbek language. - Tashkent: Fan, 1968
42. Safayev A.S. Semantic-syntactic division of sentences in the Uzbek language. - Tashkent: Fan, 1977 .-- 142 p.
43. Smirnitsky A.I. Syntax of the English

language. - M.: Publishing house lit. to foreign yaz., 1957.
44. Tenishev E. Movement verbs in Turkic languages. Collection. Historical development of the vocabulary of the Turkic languages. - M., 1961 .-- 232-293 p.
45. Figurovsky I.A. In defense of minor members of the proposal // Russian language at school. - 1959. - No. 2. B. 19-27.
46. Khrisanov N.V. Adverbialization of prepositional-nominal combinations in the modern Persian language // Indian and Iranian philology (vocabulary issues). - M. 1971.- B. 127-145.
47. Shapiro A.B. To the doctrine of the secondary members of the sentence in the Russian language // Questions of linguistics. - 1957. - No. 2. - B. 71-83.
48. Shakhmatov A.A. Syntax of the Russian language. - L., 1941.
49. Shvedova N.Yu. Determining Object and Determining Circumstance as Independent Propagators of a Sentence // Questions of Linguistics. - M., 1964. - No. 6. - B. 77-93.
50. Yuldashev A.A. Verbs of sensory perception // Historical development of the vocabulary of the Turkic languages. - M., 1961 .-- 294-322 p.
51. Amirova A. Circumstances of cause and purpose: Abstract of the thesis. ... Candidate of Philological Sciences - Samarkand, 1967. - 20 p.
52. Boldycheva L.I. General linguistic characteristics of the adverb (Experience of a comparative typological study on the material of the Russian and English languages): Author's abstract. diss. ... Cand. philol. Sciences. - M., 1981. - 20 p.
53. Vakhidov A.A. Participles in modern Persian (functional and grammatical analysis): Diss. ... Cand. philol. sciences. - M., 1990 .-- 178 b.
54. Mavlyanova E.I. Circumstances of the mode of action in the modern Tajik literary language: Avtoref.diss. ... Candidate of Philological Sciences. - Stalinabad, 1961 .-- 21 p.
55. Mengliev B. Morphologik vositalarning manoviy hususiyatlari va syntactic imkoniyatlari: Filol.fan.nomzodi .... dissertation author. –Bukhoro, 1994. - 23 p.
56. Muminova M. Circumstances of the mode of action in the modern Uzbek language: Author's abstract. ... Candidate of Philological Sciences. - Samarkand, 1965, - 17 p.
57. Rzayeva A.A. Adverbs in the modern Persian literary language: Author's abstract. diss. ... Cand. philol. sciences. - Baku, 1963 .-- 19 p.
58. Fishing V.N. Ways of expressing the circumstances of the course of action in the modern Romanian language: Author's abstract. diss. ... Cand. philol. sciences. - M, 1960. - 17 b.
59. Sayfullaev A.R. Semantics and grammar of members of a sentence in the modern Uzbek language: Author's abstract. diss. … Doctor of Philological Sciences. - Tashkent, 2001 .-- 47 p.
60. Safayev A.S. Secondary members of the sentence in modern Uzbek language: Abstract of the thesis. ... doct. philological sciences. - Tashkent, 1969.
61. Semigulova D.S. Circumstances of place and time in the modern Uzbek language (in comparison with Russian): Author's abstract. diss. ... Cand. philol. sciences. - Tashkent, 1963 .-- 20 p

Scientific Researcher
Tashkent State University of Oriental Studies
Tashkent Uzbekistan

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

Reg. No. 124726035RC0001
ISSN : 2562-6086
PRICE : $ 10.00 - Rs. 175

वर्ष 3, जनवरी–मार्च, 2021 अंक 1

पुस्तक भारती के प्रकाशन

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक : प्रो. रत्नाकर नराले,
पुस्तक भारती, टोरंटो, कनाडा, 180 Torresdale Ave. M2R 3E4 से प्रकाशित.
Email : pustak.bharati.canada@gmail.com * Web: pustak-bharati-canada.com